# सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म
का प्रतिपाल

श्री

जन्मोत्सव विश

श्री सि

स) उ.

# अमृतकण

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
तान् सेवेत्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी।।

(वन. 1/26)

जिनके विद्या, कुल और कर्म–ये तीनों शुद्ध हों, उन साधु पुरुषों की सेवा में रहे। उनके साथ बैठना, उठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी श्रेष्ठ है।

❊ ❊ ❊

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः।।

(किष्किन्धा० 64/1)

मन को विषादग्रस्त नहीं बनाना चाहिये; विषाद में बहुत बड़ा दोष है। जैसे क्रोध में भरा हुआ साँप बालक को काट जाता है, वैसे ही विषाद पुरुष का नाश कर डालता है।

❊ ❊ ❊

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

(मुण्डक 2/2/8)

कार्य–कारणरूप परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर हृदय की अविद्यारूप ग्रन्थि टूट जाती है, समस्त संशय–संदेह कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

❊ ❊ ❊

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति।।

(श्रीमद्भागवत् 6/21/23)

जो अभिमानी और भेददर्शी है, जिसने सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति वैर बाँध रखा है, अतएव जो दूसरे के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी परमात्मा से द्वेष रखता है, उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिलती।

# सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 52
अंक : 1

अप्रैल
2019

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।।

मन से श्रीराम चरणों का चिन्तन, वचन से श्रीरामचरणों का गुणगान, सिर से श्रीरामचरणों में नमन और अन्ततः उन्हीं चरणों की शरण लेता हूँ।

**श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र**
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

## इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. हमारा विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 10
3. सम्पादकीय 20
4. श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 24
5. धरती का स्वर्ग – अन्तू राम यादव 28
6. कल्याण का आधार है–योग – आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा 31
7. ईश्वर प्रणिधान अथवा भक्तियोग – श्री पूर्णचन्द शास्त्री 37
8. योगी को ही होता है अन्तर्जगत का ज्ञान 42
9. हल्दी के लाभ – डॉ. गणेश नारायण चौहान 43
10. स्थितप्रज्ञ गीता का आदर्श पुरुष विशेष – आचार्य विनोबा 46
11. शरीरगत दशवायु – श्री रामधन शर्मा शास्त्री 52
12. आय–व्यय 2017–2018 55
13. योग–आसन 56

| | |
|---|---|
| एक प्रति | : रु. 20.00 |
| वार्षिक शुल्क | : रु. 180.00 |
| द्विवार्षिक | : रु. 360.00 |
| आजीवन (10 वर्षीय केवल) | : रु.1000.00 |

# मेरे श्री गुरुदेव

## योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है और उनका स्वरूप क्या है? यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं– एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्माणित स्वरूप। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के 17 वें अध्याय में कहा है :–

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं ''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'' इसके अतिरिक्त

यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है कि इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दो के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो–जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे–से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। इसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गद्‌गद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झार–खण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरुप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाईं। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह

जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है– 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यस्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी, अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

**प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।**
**भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।**

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनि–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) **योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति**–इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी; निज निर्मित साधनों का प्रचार। इनमें उनका एक प्रमुख साधन था 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार

जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों को करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का आध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए।

इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1 : सर्वोत्तान – केवल तीन बार, समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।

2 : स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।

3 : पादचालन – आठ मिनट।

4 : नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।

5 : जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार, समय लगभग चार मिनट।

6 : बालगचलन – केवल एक मिनट।

7 : बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।

8 : नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।

9 : उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

**(2) अमर तत्व साधन –** जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका

राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन को ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेति, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा कार्य उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) **शक्तिपात दीक्षा** – जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है– सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्‌गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैंकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना

चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे बात करते-करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वे लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ-धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं है किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज है। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15-16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी! हमारे एक भाई साधू रूप में अभी-अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्‌भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने-अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख-मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी ख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े-बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं। वह तीन दिन

॥ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

दादा गुरुदेव

**योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज**

से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जायेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज है। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे–से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण–कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान् ! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष है। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ–कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या–क्या कार्य किया, वह शनैः–शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

हमारा विशेष लेख—

# परम सिद्ध योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी एवं उनकी अचिन्त्य योगशक्ति

—योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगी की अचिन्त्य शक्तियों के वर्णन में योगशिखोपनिषद में निम्नांकित प्रकरण में मिलता है—

इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रत्वजरामरः।
क्रीडते त्रिषु लोकेषु लीलया यत्र कुत्रचित्॥
अचिन्त्य शक्तिमान्योगी नानारूपाणि धारयेत्।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः॥
नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः॥
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढास्तु तत्रासौ मृत एव वै॥
कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन्मुक्तः सदा स्वच्छः सर्वदोषविवर्जितः॥

अर्थात् योगीन्द्र लोग इच्छारूप होते हैं। अपनी इच्छा से ही वे लोग तीनों लोकों में स्वतन्त्र गति से विचरते रहा करते हैं। उनकी शक्ति इतनी अद्भुत होती है कि उसको हर व्यक्ति सोच भी नहीं सकता। वे लोग एक क्षण में हजारों रूप बना सकते हैं और फिर उनका संहार भी कर सकते हैं। वे लोग हठयोग की साधना द्वारा अपने को मार चुके होते हैं, कठिन योग साधनायें करते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे लोग फिर मरणधर्मा नहीं रहते। क्योंकि जो व्यक्ति हठ–साधना द्वारा अपने आप को मार लेता है उसका फिर मरण नहीं होता। योगीन्द्र लोग विजितेन्द्रिय होते हैं। जिन वासनाओं के गर्तों में सांसारिक लोग हर समय मरते रहते हैं वहाँ पर योगेश्वर लोग सर्वथा जीवित ही रहते हैं और जिन वासना क्षेत्रों के अन्दर दुनिया के लोग

हर्षोल्लास के साथ भोगासक्ति में अपने आपको जिन्दा रखते हैं वहाँ पर ये लोग सर्वदा मरे हुए के समान रहते हैं। ऐसे योगीजनों का कुछ भी कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता। उन लोगों की स्थिति कर्मबन्धन से परे हो जाती है। ये लोग सदैव जीवन्मुक्त, स्वच्छ एवं दोषरहित होते हैं। इस प्रकार अन्यान्य स्थानों में भी योगी के अद्‌भुत ऐश्वर्य का वर्णन हमारे शास्त्रकारों ने किया है। भगवान् पतञ्जलिदेव ने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में योगी के अधिकार का वर्णन करते हुए कहा है–

**परमाणु परममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः।**

अर्थात् जिस समय योगी अपने चित्त को सूक्ष्म तत्वों में लगाना आरम्भ करता है तो परमाणुपर्यन्त उसके साक्षात्कार का विषय बन जाता है और यदि वह स्थूल की ओर बढ़ता है तो पंचमहाभूत, अहंकार और इन्द्रियों का साक्षात्कार करता हुआ मूल प्रकृति पर्यन्त बढ़ जाता है।

नेपाल हिमालय की एवं तिब्बत व भूटान की सीमास्थली हिमाच्छादित प्रदेश से पतितोद्धार के निमित्त उतरकर आने वाले सद्‌गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्रीरामलाल जी महाराज की शक्तियों का मैं क्या परिचय दूँ? मैंने अपने जीवन में उनको हर समय शक्तिमय देखा और उनके अद्‌भुत योगैश्वर्य ने ही मेरे मन को उनके चरणारविन्दों की ओर सहसा आकर्षित कर दिया।

## आँखों देखी अद्‌भुत घटना

यह घटना सन् 1929 की है। जिसमें मैंने अपने जीवन में पहली बार श्री गुरुदेव की योगशक्ति के अद्‌भुत प्रवाह को अपनी आँखों देखा था। मैं उन दिनों अमृतसर में रहता था, वह मेरा अध्ययन काल था। श्री सद्‌गुरु देव जी के दर्शन एवं योगदीक्षा, मैं पहले से ही प्राप्त कर चुका था। अकस्मात् मैंने किसी से सुना कि योगसाधन आश्रम ऋषीकेश से मेरे दो बड़े गुरुभाई यहाँ कहीं आये हुए हैं, पूछताछ करने पर पता चला कि रेलवे स्टेशन के पास लाला गागरमल की धर्मशाला में वे लोग ठहरे हुए हैं। मैंने वहाँ जाकर देखा कि परम आदरणीय मुलखराज जी महाराज एवं श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी वहाँ आये हुए थे। श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी उस समय ध्यानस्थ थे। मेरे वहाँ पहुँचने के कुछ समय बाद उनकी ध्यान–समाधि खुली और वे ये शब्द कहते हुए उठे–"हे सर्वशक्तिमान् सर्वसमर्थ योगेश्वर! आप आप ही हैं। इस कलिकाल में आप जैसा कोई देखने में नहीं आता।" मैंने आदरणीय भाई श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी से परम विनयपूर्वक पूछा–भाई जी! आप यह क्या कह रहे हैं? इस समय का आपका क्या अनुभव है? कृपा कर बतला दीजिए। उन्होंने कहा–भाई! तुम्हारा इस मार्ग में अभी प्रवेश नहीं है, तुम इन बातों को समझ नहीं सकोगे। इसलिए ये सब बातें पूछने की हठ मत करो, किन्तु मैंने अपने आग्रह को नहीं छोड़ा तो ब्रह्मचारी जी ने मुझे

बतलाया कि कल सायं लगभग 5 बजे श्री गुरुदेव जी ने किसी तपेदिक के रोगी के रोग को अपने शरीर पर आकर्षित कर लिया है और उसके उस महाकष्ट को श्रीप्रभुजी तीन दिन तक लगातार स्वयं भोगेंगे और वह रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा।

यह घटना बिल्कुल सत्य थी। इस आश्चर्यप्रद एवं चमत्कारिक घटना को देखने के लिए मैं दो दिन बाद ही ऋषिकेश आश्रम पहुँच गया। वहाँ जाने पर देखा कि श्री प्रभुजी नेपाली धूसा (नेपाली कम्बल) ओढ़े आराम कुर्सी पर बैठे हैं और उनकी शरीर की कान्ति बहुत ही कृश एवं पीतवर्ण सी मालूम पड़ती है। मैंने जब उनकी इस स्थिति को जानने की इच्छा विनम्रतापूर्वक प्रकट की तो श्री गुरुदेव जी ने मुझे कोई जवाब नहीं दिया, प्रत्युत हँस पड़े और कहा—कोई बात नहीं यह तो शरीर का धर्म है। इस प्रकार की बातें होती रहा करती हैं।

वह रोगी उस समय उनके पास बैठा हुआ था जिसके कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपने शरीर पर आकर्षित किया था। उस रोगी ने मुझे बताया—भाई जी! यह मेरे पापों का परिणाम है। मेरे कष्ट को श्री प्रभुजी ने अपनी योग शक्ति से अपने शरीर पर आकर्षित करके भोगा है। मैंने स्वयं अर्धतन्द्रावस्था में श्री प्रभुजी को अपने सामने खड़ा देखा और मुझसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था—''ला यह अपना भोग अब हमें दे दे। अब तू इसको नहीं भोग सकेगा। यह कहकर श्री प्रभुजी ने मेरे सारे रोग को अपने शरीर पर आकर्षित कर लिया। मैंने अपने रोग को एक काले रंग के गोले के रूप में अपने मुख से निकलते और श्री प्रभु जी के मुख में प्रवेश करते देखा। जिस समय श्री प्रभुजी ने इस महारोग का अपने शरीर पर आकर्षण किया उस दिन से तीन रोज बाद तक किसी को अपने पास आने नहीं दिया और एकान्त में लेटे रहे।'' मेरे लिए यह अद्भुत घटना थी, जिसको देखकर मैंने योग की विलक्षण शक्ति को पहचाना एवं योगाभ्यास करने की तीव्रतम प्रवृत्ति बनी और उसी दिन से इस मार्ग का तीव्रतम अन्वेषण मेरे मन में प्रारम्भ हो गया तथा परमेश्वर की कृपा से मुझे इसमें अच्छी सफलता मिली।

## काय निर्माण

अचिन्त्य शक्तिमान्योगी अपनी निर्माण काय की योग्यता से अनेकों शरीर धारण कर सकता है और फिर उनका संहरण भी कर सकता है।

सद्गुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के जीवन चरित्रों में इस प्रकार की बहुत सी घटनायें मिलती हैं। सन् 1911 के लगभग जब श्री प्रभुजी ने कुछ समय संवाई ग्राम में निवास किया था, उस समय वहाँ के सत्संगियों ने एक गुफा बना दी थी जिसमें श्री प्रभुजी निवास किया करते थे। सत्संगी लोग हमेशा उनके चरणारविन्द में आते रहा करते थे। एक

समय एक आश्चर्यजनक घटना घटी। श्री प्रभुजी संवाई ग्राम में तो रहते ही थे किन्तु कभी–कभी इधर–उधर भ्रमणार्थ भी चले जाया करते थे। एक बार श्री प्रभु जी ने कहीं जाने की इच्छा की किन्तु सत्संगी लोगों ने उनको आग्रहपूर्वक रोक लिया। अतः श्री प्रभु जी रुके रहे। किन्तु लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब कन्हीराम बौहरे ने सब लोगों के बीच में आ करके कहा–महाराज जी! आप इतनी जल्दी हम लोगों से पहले कैसे चले आये? कल तो आप हम लोगों के साथ रहे थे व साथ ही गंगास्नान किया था, और कोई गाड़ी तो आती नहीं जो हमसे पहले आप आ गये हैं। उधर गाँव के लोग जो सत्संग में बैठे हुए थे। उन्होंने कहा–तुम क्या कह रहे हो। श्री महाराज जी तो यहाँ से कहीं गए ही नहीं। सभी को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर बाद किसी दूसरे व्यक्ति ने आकर कहा–महाराज जी! कल तो आपने मेरी जिन्दगी बचा दी। यदि मैं उस भारी गड्ढे में गिर जाता तो अवश्य मर ही जाता। आपने मेरी बाजू पकड़ कर गिरने से बचा दिया। आपकी इस महान् कृपा का मैं क्या बदला दे सकता हूँ। सत्संग में बैठे लोगों ने जब उससे उस घटना के विषय में पूछा तो घटना बिल्कुल यथार्थ थी। श्रीप्रभुजी ने निर्माण काय से उसके शहर में प्रकट होकर उसकी रक्षा की थी। श्री प्रभुजी स्थूल शरीर से कहीं गये नहीं थे।

इस प्रकार की उनके निर्माण काय को प्रकट करने वाली अनेकानेक घटनायें मेरी स्मृति में हैं। विस्तार के भय से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है, फिर श्री निर्माण काय से सम्बन्ध रखने वाली एक दिव्य घटना का थोड़ा सा संकेत कर देना उचित समझता हूँ।

## यशवन्त वाली घटना

अमृतसर में एक पुराने सत्संगी भाई धूप की दुकान करते हैं। वे बहुत छोटी आयु में श्री प्रभु जी के चरणारविन्द में सेवार्थ आये थे। उनका नाम यशवन्त है और वे दुर्ग्याना में लोहे के फाटक के साथ भाई धनवन्त कौर की धर्मशाला के सामने धूप की दुकान करते हैं। प्रभु जी के निर्माण–काय की एक घटना उनके साथ भी घटित हुई।

अपनी बाल्यावस्था में ही जब उन्होंने मन लगाकर श्री प्रभुजी की सेवा की तो उसी समय उनके मन में यह इच्छा हुई कि– योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज कृपापूर्वक उनके घर चलकर अपनी चरण रज से उस भूमि को पवित्र करें। अतः उन्होंने हठपूर्वक श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में निवेदन किया–प्रभो! आप कृपा करके एक बार मेरे घर चले चलें। श्री प्रभु जी उस दिन अधिक व्यस्त थे। अतः उस प्रार्थना को किसी प्रकार स्वीकार नहीं किया जा सकता था, किन्तु उनकी अत्यन्त विनम्रता को देखकर श्रीप्रभु जी ने कह दिया–बेटा! तू अपने घर चल। हम समय निकालकर अवश्य पहुँच जायेंगे। बालक यशवन्त ने अपने मन में विचार

किया कि श्रीप्रभुजी ने मेरे मन की तुष्टि के लिए ही पहुँच जाने की बात कही है। यदि उन्होंने जाना होता तो मेरे साथ ही चलते या मुझे आज्ञा देते कि तुम अमुक समय मुझे बुलाने के लिए आ जाना, किन्तु उन्होंने कहा है कि हम पहुँच जायेंगे। यह तो टालने वाली बात है। उस सरल बच्चे को यह बोध नहीं था कि श्री प्रभु जी को वह कितना प्रिय है और वे अन्तर्यामी अपनी योगशक्ति से अपने वचन को निभायेंगे। यशवन्त निराश मन से अपने घर पहुँचा। बैठक का दरवाजा खोला तो क्या देखता है कि सामने श्री प्रभु जी स्थूल रूप से विराजमान हैं और हँस रहे हैं। यशवन्त ने श्री प्रभुजी के चरण पकड़ लिये और निवेदन किया–प्रभो! मैं तो अभी रास्ते से ही चलकर आ रहा हूँ और आगे दरवाजा भी बन्द था। आप किस प्रकार आ गये हैं? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया–बेटा! तुम्हारे पवित्र प्रेम को देखकर तुम्हारे घर आ ही गया हूँ किन्तु यह बात किसी से नहीं कहना।

यह घटना प्रिय यशवन्त धूपवाले ने स्वयं मुझे बतलाई थी। श्री प्रभुजी के काय निर्माण का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

## अणिमा का प्रयोग एवं आकाशगमन

योग योगेश्वर सद्गुरुदेव प्रभु श्रीरामलाल जी महाराज जिन दिनों संवाई ग्राम में निवास करते थे उस समय की यह एक दिव्य घटना है। एक बार सत्संग लगा हुआ था। आसपास संवाई, टूण्डला, ऐत्मादपुर आदि के सभी सत्संगी श्री प्रभुजी की सेवा में सत्संगार्थ उपस्थित थे। अकस्मात् प्रसंग वश श्री प्रभुजी ने अपने देशान्तर गमन की इच्छा प्रकट की। प्रभुप्रेमी सत्संगियों पर यह बड़ा आघात था। वे अपने प्यारे गुरुदेव के विछोह को सहन नहीं कर सकते थे। इसीलिए उन्हें देशान्तर गमन से रोकने के लिए सभी ने अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना की, किन्तु श्री प्रभुजी को यह स्वीकार नहीं थी और वे जाना ही चाहते थे। लोगों के मन में यह भ्रान्ति पूरी–पूरी बैठ चुकी थी कि आज श्री प्रभुजी कहीं न कहीं अवश्य चले जायेंगे।

इसी भ्रान्ति के वशीभूत होकर उन लोगों ने जब श्री प्रभु जी समाधि के अभ्यास के लिए गुफा के अन्दर गये हुए थे उसी समय गुफा के बाहर से ताला लगा दिया। जिससे श्री प्रभुजी रात्रि को चुपचाप न चले जायें। लोगों का विचार था कि इस समय श्री प्रभुजी समाधि में बैठ गये हैं और प्रातःकाल उनकी समाधि खुलते ही हम ताला खोल देंगे, किन्तु उन लोगों की भावना पूरी न हो सकी। श्री प्रभुजी रात्रि को ही अणिमा सिद्धि के प्रयोग से गुफा के बाहर निकल गये और आकाशमार्ग से उड़कर अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले गये। जिस समय श्री प्रभु जी आकाश मार्ग से उड़ कर जा रहे थे तो संवाई गाँव के खेतों में सूखा नाम का एक धीवर हल चला रहा था। उसने देखा–प्रभुजी आकाशमार्ग से कहीं जा रहे हैं।

पहले तो वह बड़ा भयभीत हुआ। क्योंकि उसके लिये यह पहला दृश्य था, जब उसने आकाश में उड़ते हुए व्यक्ति को देखा। उसके मन में विचार आया कि यह क्या कोई मनुष्य है अथवा यक्ष, किन्नर या देवता है? उसको अत्यन्त भयभीत देखकर श्रीप्रभुजी बोल उठे—अरे सूखा! डरो मत, हम गुफा वाले बाबा हैं। श्री प्रभुजी की वाणी सुन कर उसको कुछ धैर्य हुआ। वह यह पहले ही जानता था कि गुफा वाले बाबा कोई साधारण साधु नहीं हैं। वे चमत्कारिक महात्मा हैं। उनके वरदान देने से गाँव के लोगों को अनेक प्रकार के महान लाभ हुए हैं जो वर्णन से बाहर हैं। यह जानकर उसके मन में कोई भय नहीं रहा। उसको सान्त्वना देकर आकाशमार्ग से ही श्रीप्रभु जी चले गये। प्रातःकाल होने पर सत्संगी लोग इधर–उधर से आये। गुफाद्वार का ताला खोल कर भीतर जाने की चेष्टा की तो उन्होंने देखा कि भीतर से भी संकल बन्द है।

उन लोगों ने समझा कि श्री प्रभु जी अभी समाधिस्थ हैं, किन्तु काफी समय बीत जाने पर भी जब वे बाहर नहीं निकले तो उन लोगों को कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने गुफा के अन्दर वाले कमरे की दीवाल को काटकर एक बच्चे को अन्दर घुसाया। उस बच्चे ने अन्दर जाकर देखा कि श्री प्रभुजी वहाँ नहीं हैं। उसी समय गुफा में से एक आवाज आई—बेटा! तुम लोगों ने हमें यहाँ हठात् रोकना चाहा था। इसीलिए अब हम यहाँ से चले गये हैं। इस समय तो तुम लोगों को हमारे दर्शन हो नहीं सकते। बारह वर्ष के बाद हम पुनः लौटकर आयेंगे। तुम लोग पहचान सको तो पहचान लेना। ऐसा ही हुआ भी। ठीक बारह वर्ष बाद श्री प्रभुजी पुनः संवाई ग्राम में पधारे और यहाँ के लोग उन्हें नहीं पहचान सके, किन्तु श्री प्रभु जी ने अनुग्रह करके इन लोगों को अपना परिचय दे दिया।

## अमोघ वाणी

योगदर्शन में भगवान् पतञ्जलिदेव लिखते हैं—

**सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।**

अर्थात् सत्यप्रतिष्ठ योगी की वाणी बिल्कुल अमोघ हो जाती है। वह जो कुछ भी अपनी वाणी से कहता है तत्काल फलीभूत हो जाता है। मैंने संवाई आने पर श्री प्रभुजी के चरित्रों में यह बात स्पष्ट रूप से देखी कि उनकी वाणी पूर्णरूपेण अमोघ थी। उन्होंने मजाक में भी जो कुछ कह दिया वह पूर्णरूपेण सत्य हुआ। जब मैं पहली बार संवाई गांव में आया तो ठाकुर गुलाबसिंह की पक्की कुटिया में ठहरा था। वहाँ पर एक वृद्ध ने मेरे पास आना प्रारम्भ किया। वह कुछ हकलाकर बोलता था। अतः मैं उसकी बात को पूरी तरह समझ नहीं पाता था। आसपास के लोगों ने बूढ़े की भाषा समझायी। वह बुड्ढा कुछ जल्दी–जल्दी बोला करता था। जब भी वह मेरे पास आता यही कहा करता था—महाराज जी! आपके चार गुलाम हैं, उनसे

जितनी अधिक से अधिक सेवा हो सके लेना। भाई! मैं समझा नहीं, ये चार गुलाम क्या हैं? तो उसने स्पष्ट कहकर समझाया—महाराज जी! मेरी तीन शादियाँ हुई और तीनों स्त्रियाँ स्वर्ग चली गई। जिस समय मेरी तीसरी स्त्री का देहान्त हुआ तो मेरे मन में अतिशय दुःख हुआ। मैं पागलों की भाँति रोता—बिलखता बड़े—बड़े बाबा (श्री प्रभुजी) के चरणारविन्द में पहुँचा। उन्होंने मेरे दुःख को देखकर कहा—भाई ठकुरी! तू रोता क्यों है? घबरा मत। अभी तेरी चौथी शादी होगी और उससे चार बच्चे होंगे। बुड्ढे ने बताया—सो महाराज मेरी चौथी शादी भी हो गई और जैसा श्री प्रभुजी ने अपने मुखारबिन्द से कहा था वैसा ही हुआ, मेरी चौथी पत्नी से चार पुत्र हुए और वे सभी मौजूद हैं। उनसे आप जो भी बड़ी से बड़ी सेवा ले सकें अवश्य लें। वे लोग अवश्य आपकी सेवा करेंगे।

इस प्रकार की और भी बहुत सी बातें उस गाँव के लोगों ने मुझे बताई जो श्री प्रभु जी की अमोघ वाणी की शुद्ध प्रतीक हैं।

## निर्माण चित्त के द्वारा उपदेश

भगवान् पतंजलिदेव ने योगदर्शन में कहा है—

**निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात्।**

इस मूल के भाष्य में भगवान् व्यासदेव जी लिखते हैं—

**अस्मितामात्रं चित्तकारणमुपादाय निर्माण—**
**चित्तानि करोति। ततः सचित्तानि भवन्तीति।**

अर्थात् जब योगी अस्मितानुगत योग का उत्कृष्ट विद्यार्थी बन जाता है तो उसके अन्दर चित्त निर्माण की स्वाभाविक योग्यता आ जाया करती है। ये निर्माणित चित्त क्योंकि ध्यानज होते हैं, इसलिए इनमें कर्माशय की स्थिति नहीं होती। निर्माणित चित्त केवल मात्र अपने मनोभावों का दूसरों को ज्ञान कराने के लिए हुआ करता है। जब योगी अपने इस प्रकार के चित्तों का निर्माण किया करता है तो प्रवृत्ति भेद से उन सबको अपने प्रधान चित्त के अधीन रखकर अपने विनयी लोगों में अनेक प्रकार के उपदेश या वार्तालाप किया करता है। हमारे इतिहास में निर्माण—चित्त के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जैसे—कपिलदेव ने अपने आसुरी नामक शिष्य को निर्माणचित्त का आश्रय लेकर तन्त्र का उपदेश दिया था।

इसी प्रकार से मैंने श्रीगुरुदेव योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी को अनेकों बार उपदेश करते देखा। यद्यपि उनका निर्माणित चित्त साधक श्रेणी वाला नहीं था। अनादि महासिद्धों की तरह ही ये उनके सहज कार्य थे, किन्तु अभ्यास करने वाला साधक—समुदाय जब उनकी आँखों के सामने बैठ करके अपना—अपना ध्यानाभ्यास किया करता था तो बहुत ही जल्दी अपने ध्येय में तन्मय हो जाया करता था और वे सभी साधक यह देखते थे कि उनके सामने

श्री प्रभुजी विराजमान हैं और उनके चित्त में सूक्ष्म तत्व का स्फुरण करा रहे हैं। कई बार यह देखने में आया कि–ध्यानाभ्यास करने वाले साधकों की कक्षा लगी है और श्री प्रभुजी ने निर्माणचित्त के द्वारा उन सबके पास जाकर एक ही बात का उपदेश दिया और उस तत्व को जिनकी उत्कृष्ट स्थिति थी उन सबने एक ही जैसा अनुभव किया। इस प्रकार अभ्यास करने वाले साधकों को भी थोड़े समय के बाद स्वयं चित्त निर्माण की योग्यता आ जाती थी। पहले पहल श्री प्रभुजी स्वयं ही अपने मन के संकल्प से उनके ध्यानज चित्तों का निर्माण कर दिया करते थे। जिसके फलस्वरूप ध्यानाभ्यासी साधक अपने आपको एक से अनेक रूपों में देखने लगता था और यह स्पष्ट अनुभव करता था कि मैं यहाँ बैठने वाला अमुक व्यक्ति अमुक नाम वाले व्यक्ति के पास बैठ रहा हूँ और उससे बातचीत कर रहा हूँ। इस प्रकार की अनुभूति का होना चित्त निर्माण की प्रखर योग्यता का ही परिणाम था।

## 'महिमा' सिद्धि का उपयोग

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि भूतजय हो जाने के बाद योगी को अनायास ही अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाया करती हैं। जिसमें योगी अणुमात्र का चिन्तन करता हुआ अणु बन जाये तो समझ लेना चाहिए कि अणिमा सिद्धि हो गई। लघुत्व का चिन्तन करता हुआ यदि अपने अन्दर लघुत्व का स्पष्ट अनुभव करने लगे तो अपने आपको रूई की भाँति हल्का देखने लगे तो समझ लेना चाहिए कि यह अनुभव लघिमा सिद्धि का है। महिमा का चिन्तन करता हुआ योगी बृहदाकार हो जाता है। उसका संकल्प इतना तीव्र होता है कि वह चिन्तनमात्र से ही अपने को महान देखने लगता है।

सवाई के चरित्रों में उस विलक्षण घटना को प्रायः सभी लोग जानते हैं, जब कि बोहरे कर्णसिंह व श्री प्यारेलाल पटवारी ने श्री प्रभु जी से योग की कोई विशेष चमत्कृति दिखाने के लिए बार–बार हठपूर्वक आग्रह किया था। यद्यपि श्री प्रभु जी इस प्रकार की कोई बात नहीं चाहते थे किन्तु उन लोगों के लगातार आग्रह करने का यह परिणाम निकला कि श्री प्रभु जी हँस पड़े और मुस्कराकर बोले–अच्छा, तुम जो कुछ देखना चाहते हो देख लो। उन दोनों ने अपनी आँखों के सामने क्षणभर में ही श्री प्रभु जी को बृहदाकार रूप में देखा। जिसको देखकर वे लोग स्वयं को संभाल नहीं सके और घबराकर बेहोश हो गए एवं अचेतावस्था में भी अनेकानेक दृश्य देखते रहे। जिनका वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

यह योगेश्वर प्रभु श्रीरामलाल जी की महिमा सिद्धि का उत्कृष्ट प्रमाण है। इन सब बातों के लिए उनके मन में साधारण संस्कार का स्फुरण होना ही पर्याप्त होता था। ज्यों ही उनके मन में इस प्रकार का संकल्प होता त्यों ही साधकों को तत्काल अनुभूतियाँ हो जाया करती थीं।

# संस्कारों का साक्षात्कार एवं भावी जन्म का ज्ञान

योगदर्शन बताता है–

**संस्कार साक्षात्करणात्पूर्व जातिज्ञानम्।**

संस्कारों के साक्षात्कार करने से योगी को पूर्वजाति का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है. पूर्वजाति में हम कौन थे? इसका ज्ञान योगी को अपने संयम के आधार पर हो जाया करता है और इसी प्रकार दूसरे के चित्त के संस्कारों का ज्ञान उसके अनुरक्त चित्त को साक्षात्कार कर लेने के बाद अवश्य ही हो जाया करता है। भगवान् पतंजलिदेव इस सम्बन्ध में बताते हैं–

**प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम्।**

व्यासभाष्य–

**प्रत्यये संयमात्प्रत्ययस्य साक्षात्करणात्ततः परचित्तज्ञानम्।**

प्रत्यय शब्द का अर्थ है–'**प्रतीयतेऽर्थोऽनेनेति प्रत्ययः।**' जिसका अवलम्ब लेकर अर्थ का ठीक–ठीक बोध हो जाए इसे प्रत्यय कहा जाता है। अर्थज्ञान का यही मूल कारण है। चित्त के अन्दर घूमने वाले संस्कारों में संयम करने से योगी को दूसरे के चित्त का भी यथार्थ ज्ञान हो जाया करता है। योग ही इस प्रकार के उत्कृष्ट ज्ञान की दात्री एकमात्र विद्या है।

एक बार मेरे गुरुभाई ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी के मन में अपनी मृतात्मा माता की गति का ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हुई। इसी उद्देश्य से वे ध्यान में बैठ गये। उस समय उनका चित्त एकाग्र था फिर भी अपनी माता की गति का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पा रहा था। अतः उन्होंने ध्यानावस्था में श्री प्रभुजी से प्रार्थना की–प्रभो! कृपा करके मेरी माता की गति का ज्ञान कराओ। श्री प्रभुजी ने थोड़ा सा संकेत किया और गोपालानन्द जी के मन को बल दिया। जिसके फलस्वरूप एक मछियारे की लड़की के रूप में उन्होंने अपनी माता को देखा। अपनी माता की इस प्रकार की निकृष्ट गति को देखकर श्रीब्रह्मचारी जी को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने श्री प्रभु जी से प्रार्थना की–हे प्रभो! इसकी कोख से मैंने जन्म लिया था, मेरी जन्मदात्री इस माता की यह गति क्यों हुई? श्री प्रभुजी ने ध्यान में ही आज्ञा दी कि तुम इसके मरणासन्न समय के संस्कारों को देखो यह उस समय क्या इच्छा कर रही थी।

श्री प्रभुजी की आज्ञानुसार ब्रह्मचारी जी ने अपनी माता के मरणसमय के चित्त में संयम किया कि उसका चित्त मृत्युकाल में किन विषयों का चिन्तन करता हुआ देहत्याग कर रहा था। ब्रह्मचारी जी ने देखा कि उनकी माता मृत्यु के समय मछली के तेल का चिन्तन करती हुई शरीर को छोड़ रही है। यह देखकर ब्रह्मचारी जी के मन को भारी दुःख हुआ कि अन्तिम समय में उनकी माता ने मछली के तेल का स्मरण क्यों किया। ध्यान–समाधि से उठकर उन्होंने

अपनी बड़ी बहिन रुक्मणीदेवी से पूछा—बहिन! माता जी अन्तिम समय में किन भावों का स्मरण कर रही थी? बहिन ने बतलाया कि माताजी के पेट में अफारा हो गया था। डॉक्टर ने उसे मछली का तेल पिलाने की सलाह दी थी। हम लोगों ने यह प्रयत्न भी किया कि किसी भी प्रकार उनकी जिन्दगी बच जाये तो अच्छा है। बाद में शुद्धि कर लेंगे। एक बार उनको मछली का तेल ही पिला दें। हमने मछली का तेल लाने के लिए एक आदमी बाजार भेजा। उसके लौटकर आने से पहले ही माताजी ने शरीर त्याग दिया। संभव है उनके मन में मछली के तेल के संस्कार मृत्युकाल में रहे हों। ब्रह्मचारी जी ने स्पष्ट रूप से समझ लिया—**'अन्तमती सो गती।'**

जगदात्मा श्रीकृष्ण ने गीता के 8 वें अध्याय में इसी भाव को बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कहा है—

**अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।**
**यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।**
**यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।**
**तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।**

अर्थात् अन्तिम समय में जो मेरा स्मरण करता हुआ देह–त्याग करता है वह निस्सन्देह मुझ परमात्मा को ही प्राप्त हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति मृत्युकाल में जिन भावों का स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है तद्भाव भावित होकर वह वैसी ही गति को प्राप्त हो जाया करता है।

इस प्रकार श्री प्रभुजी ने अपनी शक्ति देकर ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी को संस्कार साक्षात्कार करने की योग्यता वाला बनाया। उनके अलौकिक चरित्रों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ? ये सब घटनायें अब भी उसी प्रकार घटित होती रहा करती हैं जैसी उनके उपस्थिति काल में होती थी। उनका स्थान–स्थान पर प्रकट होना, वरदान देना व अपने जिज्ञासु भक्तों की सहायता करना नित्य का कार्य है। उनका प्रत्येक क्रियाकलाप एवं पवित्र योगोपदेश आज भी उसी प्रकार मनुष्यों के कल्याण का पथ प्रशस्त कर रहा है।

सम्पादकीय—

# परम गुरुदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

—योगाचार्य डॉ. दासलाल जी-महाराज

ईश्वर सर्वव्यापक और अनादि है। वह सृष्टि का सर्वप्रथम गुरु है। योग दर्शन में पतञ्जलिदेव जी महाराज ने **'सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** कहकर ईश्वर को सृष्टि का प्रथम गुरु कहा है। तीनों काल में विद्यमान रहने के कारण उनकी सत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहती है। वही ईश्वर समय–समय पर सगुण रूप में आकर प्रकट होते हैं और भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं—जैसा कि भगवान ने गीता के चौथे अध्याय में घोषणा की है। योग रूपी धर्म की स्थापना समय–समय पर प्रकट होकर करते रहते हैं। ईश्वर की भांति महायोगियों का चरित्र भी अलौकिक होता है, उनके चरित्र व इतिहास को जानना असंभव होता है। ऐसे योगी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय प्रकट होकर अपना अभीष्ट कार्य किया करते हैं। उनका जन्म और कर्म मानुषी बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता है। वे ईश्वर के तुल्य ही होते हैं। ऐसे ही एक महायोगी हुए हैं जो सृष्टि के अन्त तक हिमालय में अजर–अमर रहकर वास करते हैं तथा योग विधि से काय–निर्माण कर पृथ्वी पर आते रहते हैं जिनका परम पावन नाम महाप्रभु रामलाल है। वे एक ही समय में अनेक स्थानों पर काय–निर्माण से शरीर बनाकर योग विद्या के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकट होते रहते हैं। ऐसे योगियों के काय–निर्माण से कार्य करने की बात उपनिषदों में वर्णित है।

**''अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणिधार येत्।''** अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न योगी नाना रूपों तथा नाना नामों से रहकर अपना अभीष्ट कार्य करते रहते हैं। ऐसे योगी अपने भक्तों के अविद्यादि क्लेश रूप दुःख द्वन्द्वों को मिटा देते हैं। योग ध्यान की विधि द्वारा भक्तों को पूर्णतया योग मार्ग में लगाने के लिए तीव्र शक्तिपात कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर, योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर, उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करा देते हैं। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि का बोध करा देते हैं।

आनन्दकन्द प्रभुजी बीसवीं सदी के सिद्ध योगियों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। जन्म से ही उनकी योग शक्तियों का परिचय जन सामान्य को मिलने लगा था। मध्य युग में नाथ योगियों के चमत्कारिक विभूतियों से लोगों में योग विद्या के प्रति विश्वास एवं आकर्षण हो गया था। इस

से धर्म एवं आध्यात्म के दिव्य ज्ञान का प्रचार किया गया। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ, शिवा योगी गोरक्ष नाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द एवं चौरासी सिद्धों के दिव्य चमत्कारों की गाथा भारत में फैली हुई है। वस्तुत: योग ही शाश्वत् जीवन की प्राप्ति का मार्ग है। इसी से जीव अखण्ड शान्ति तथा जन्म मरण के क्रम को तोड़ सकता है।

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने दिव्य शक्तिपात के द्वारा साधकों को योग की ऊँची–ऊँची भूमिकायें प्रदान की हैं। वहीं पर जन सामान्य के स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए दिव्य क्रियाओं को अपने मन से आविष्कार करके जीवन तत्व साधन के नाम से क्रियाओं का प्रचार–प्रसार जन सामान्य में किया है। ये क्रियायें स्वास्थ्य के साथ–साथ नाड़ी शोधन द्वारा मन की एकाग्रता को भी प्रदान करने वाली हैं जिसे हर व्यक्ति कर सकता है यहाँ तक रोगी व्यक्ति भी उनका अभ्यास करके धीरे–धीरे पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। रोगों की निवृत्ति के लिये ये रामबाण हैं। कालान्तर में रोगी भी योग ध्यान में प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भारतभूमि में शक्तिपात द्वारा योग विद्या को आगे बढ़ाने वाली संस्थायें बहुत ही कम हैं। पूर्ण योगीराज सिद्ध ही शक्तिपात का सामर्थ्य रखता है।

महाप्रभु रामलाल जी महाराज कल्पान्त जीवी अजर अमर सिद्ध हैं। योग पृथ्वी से लुप्त प्राय: होता देखकर बीसवीं शताब्दी में योग विद्या के अनेक रूपों से योग का प्रचार किया है। वे योग के साक्षात् स्वरूप हैं। उनके श्वास–श्वास में योग की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। ''**कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्**'' की शक्ति वाले हैं। अर्थात् अपनी इच्छा से ही किसी वस्तु का निर्माण कर लें, क्षण में किसी को सिद्ध बना दें तथा उनके विपरीत चलने पर नीचे गिरा दें यह सब सामर्थ्य उनमें विद्यमान हैं। सिद्धों की इच्छा के अनुरूप ही प्रकृति चलती है। पातञ्जल दर्शन में योग विभूतियों पर भाष्य लिखते हुए भगवान् व्यास देव जी लिखते हैं कि योग सिद्ध योगियों की इच्छा के अनुसार प्रकृति उसी प्रकार से चलती है जिस प्रकार से सद्य: प्रसूत गौ अपने बछड़े के पीछे–पीछे चला करती है। श्री महाप्रभु जी ने कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा में रहकर उस भूमि को पवित्र किया और उसे योग का ह्रदय बनाकर गये। इसकी रज योग विभूतियों से ओत–प्रोत है। सिद्ध पुरुष ही ऐसे योगियों के विषय में जान पाते हैं साधारण मनुष्य नहीं। उनके शिष्यों की लम्बी शृंखला में देवरहा बाबा प्रभृति अनेक सिद्ध हैं जो हिमालय की कन्दराओं में अजर अमर हैं। श्री योगी हरीहरानन्द जी महाराज को श्री प्रभु जी ने एक क्षण में तत्त्व विजयी सिद्ध बना दिया जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं, ऐसा हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी हमें अपने श्री मुख से बतलाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा से ही अनुप्राणित होकर सैंकड़ों योग शाखायें देश–विदेश में चल रही हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज जी ने अपने शिष्यों के मन में श्री प्रभु जी के अप्रतिम योग प्रभाव को

स्थापित किया है इसी कारण से उनके शिष्य प्रभुजी को सदाशिव स्वरूप मान कर उनकी पूजा व ध्यान करते हैं तथा सफल मनोरथ होते है।

आपका अवतरण पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी के घर में सन् 1888 में श्री राम नवमी के पावन पर्व में हुआ। श्री माता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। आप के जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का प्रमाण मिल गया था। आप के पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में प्रभुजी का अवतरण हुआ था। शैशवावस्था में ही आपके कार्य बड़े अलौकिक थे। चौदह वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे। विद्याध्ययन के समय ही आपके कई चमत्कार विद्यार्थियों ने देखे।

एक दिन दोपहर विश्राम के समय आप विश्राम कर रहे थे तभी एक नाग इनके सिर पर छाया किये खड़ा था। कुछ देर बाद स्वतः ही गायब हो गया। वहाँ से आप काशी जी चले गये। उस समय में बहुत से तांत्रिक मान्त्रिकों से आप की टक्कर हुई। आपने सभी की शक्तियों को परास्त किया और कुरीतियों तथा व्यभिचार के केन्द्रों को नष्ट किया। सभी आप की यौगिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्षों बाद आप श्री धाम वृन्दावन की ओर चले आये तथा घूमते-धूमते बरहन गाँव के लोगों पर कृपा बरसाते हुए संवाई गाँव पहुँच गये। यहाँ प्यारे लाल आदि आप के परम भक्त बन गये। आप के मुख से निकली वाणी अक्षरशः सत्य होती थी। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हो गये। आप के निर्विघ्न समाधि की स्थिति के लिए उचित जगह के लिए ग्राम वासियों ने गुफा बना दी। वहाँ कुछ वर्ष श्री प्रभुजी रहे तत्पश्चात् एक दिन चुपके से प्रातःकाल ही गुफा के बन्द द्वार से अणिमा सिद्धि से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। वहाँ नेपाल में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु सदाशिव के निकट कई वर्ष रहने के बाद उनकी आज्ञा से ही योग विद्या के प्रसार के लिए पुनः मैदानों में आ गये। आपने संस्कारी भक्तों को योग मार्ग का उपदेश दिया। अपने भक्तों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन तत्त्व की साधना के उपयोगी क्रियाओं का अन्वेषण करके भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। अमर तत्त्व, फल तत्त्व आदि विशेष साधनों का प्रचार किया। इन क्रियाओं द्वारा जठराग्नि दीप्ति के साथ-साथ कुण्डलिनी जागरण के लिए शक्ति संचार की प्राचीन यौगिक आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाया। आपने कई सिद्धयोगी बनाये जिसमें ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, श्री योगी मुल्खराज जी महाराज, गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री योगी नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी एवं ऋषिदेवी जी प्रमुख हुये। इन महान योगियों ने अध्यात्म योग व ध्यान योग का उपदेश अपने शिष्यों को दिया। सबसे अधिक प्रचार करने

वालों में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन श्री महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। आप सच्चे अर्थों में श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ योगी हुए जिनके लाखों शिष्य ध्यानयोग में दीक्षित होकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। सदेह न होने पर आज भी अपने साधकों का अज्ञान तिमिर दूर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी की परम्परा के साधक भ्रमित नहीं रहते हैं। योग के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले होते हैं। योग में तर्क व विवाद का कोई स्थान नहीं है। ध्यान जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेक ख्याति ही जन्म मरण के चक्र को छुड़ा देने वाली होती है। 'सिद्धयोग' की परम्परा में यद्यपि सिद्धगुरुदेव सब कुछ स्वयं करने वाले होते हैं तथापि निमित्त मात्र से क्रिया योग की साधना का निरन्तर अभ्यास करते रहने की आज्ञा हमारे सद्गुरुदेव योगिराज जी की आज्ञा रही है। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान हैं सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साधक को चाहिए शुद्ध व निर्मल भाव से साधनारत रहे। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान रहते हैं। श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम में इस वर्ष श्री राम नवमी पर्व योग महामेला के रूप में 11, 12 व 13 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर उनके चरण–कमलों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

*सच्चा बुद्धिमान् तो वह है, जो इस रहस्य को समझ लेता है और सारे जगत् की उत्पत्ति का कारण तथा जगत् की सारी प्रवृत्तियों का हेतु एकमात्र श्री भगवान् को मानकर, भावपूर्ण हृदय से भगवान् को भजता है।*

॥ ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

# श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

दसम् स्कन्ध के अट्ठाईसवें अध्याय में वरुणलोक से नन्दबाबा को छुड़ाकर लाने की कथा कही गयी है।

एक बार नन्दबाबा ने कार्तिक शुक्ला एकादशी का व्रत किया तथा उसी दिन रात में द्वादशी लगने पर रात में यमुना स्नान किया। वरुण देव का गण उन्हें पकड़कर अपने स्वामी के पास ले गया। इधर ब्रज के गोप-गोपियाँ क्रन्दन करती श्रीकृष्ण की शरण में आकर बोलीं कृष्ण ! तुम अपने बाबा को बचाकर लाओ।

श्रीकृष्ण जब वरुण लोक पहुँचे तो वरुण ने उनका बड़ा स्वागत किया और बोला- प्रभो ! हमारा मूढ़ सेवक आपके प्यारे नन्दबाबा को यहाँ उठा लाया, हमें खेद है। आप भक्तों के भगवान, वेदान्तियों के ब्रह्म एवं योगियों के परमात्मा हैं। आप माया रहित शुद्ध ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ-

**नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने।**
**न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टि विकल्पना॥**

*(अ. 28 स्क. 10 पूर्वार्द्ध)*

आप सर्वअन्तर्यामी, सबके साक्षी हैं। हे विश्वमोहन श्रीकृष्ण ! आप मुझ दास पर भी कृपा कीजिए। इसके पश्चात् नन्दबाबा को लेकर श्रीकृष्ण ब्रज में आये। नन्द बाबा ने वरुण लोक के ऐश्वर्य तथा श्रीकृष्ण को वरुण द्वारा बार-बार प्रणाम करना आदि बातें विस्तार से जाति-भाइयों को कह सुनायीं।

गोपों को दृढ़ विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण तो स्वयं ईश्वर हैं। वे मन में सोचने लगे क्या हम लोगों को भी श्रीकृष्ण कभी अपना मायातीत स्वधाम का दर्शन करायेंगे ? अन्तर्यामी श्रीकृष्ण से क्या छिपा था ? अतः उन सभी प्रेमी गोपजनों को यमुना के ब्रह्महृद में डुबकी लगवायी। तब उसमें से निकलने पर उन्हें अपने परमधाम का दर्शन कराया। उससे पहले भगवान ने उन्हें उस ब्रह्म का साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त,

सनातन और ज्योतिः स्वरूप है। जिसे समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही देख सकते हैं–

**सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्।**

**यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः।।5।।**

उस दिव्य लोक को देखकर नन्द आदि परमानन्द में मग्न हो गये। वहाँ देखा सारे वेद मूर्तिमान होकर भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे हैं। वे सब–के–सब परम विस्मय से भर गये।

उन्तीसवें अध्याय में रासलीला प्रारम्भ प्रकरण विस्तार से कहा गया है–यह अत्यन्त काव्यमय है। विरागपूर्ण चित्त में राग का अभिनन्दन है। पूर्णकाम का काम में अवतरण की कथा है। समाधित चित्त में तरंगों की गाथा है। प्रेम–योग की साधना में बताया गया है कि योगी पश्चिम मार्ग से आरोहण कर सहस्त्रार में नीर्विजत्व अथवा केवली भाव को प्राप्त होता है। हजारों ऐसे केवली भाव वालों में विरला पुनः पूर्वा नाड़ियों द्वारा हृदय द्वार में आकर भगवान भावित होता है।

29 से 35वें अध्याय में रास सम्बन्धित चिन्मय काम की गाथा गायी गयी है। पूर्णकाम योगेश्वर कृष्ण एवं पुण्यभागा गोपियों के आन्तरिक परम–प्रेम की कथा आध्यात्मिक रूपकों में वर्णित है। सांसारी हम सभी इस गूढ़ प्रकरण को कितना हृदयंगम कर सकेंगे यह सबको अपने सात्विक बुद्धि के आधार पर परखना होगा।

अस्तु ! जब शरद् पूर्णिमा की रात्रि आयी तो यमुना तटीय वन में रात्रि के समय एकाकी कृष्ण ने ब्रज सुन्दरियों के मन को हरण करने वाली काम बीज 'क्लीं' की मधुर तान छेड़ी। ध्वनि के महान आकर्षण में गोपियाँ जिस हाल में थीं उसी दशा में सबकी उपेक्षा करके भागती, दौड़ती, निर्भय निर्जन वन में रात्रि के समय कठपुतलियों की तरह आकर श्रीकृष्ण के सामने खड़ी हो गईं। भगवान शुकदेव जी बोले–परीक्षित ! उस समय कुछ गोपियाँ घर में बन्द कर दी गई थीं। उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और बड़ी तन्मयता से श्रीकृष्ण के सौंदर्य, माधुर्य और अन्य लीलाओं का ध्यान करने लगीं।

**अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः।**

**कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलित लोचनाः।।9।।**

*(अ. 29 स्क. 10 पूर्वार्द्ध)*

श्रीकृष्ण के असह्य विरह में उनके अशुभ संस्कार पूर्णता से भस्म हो गये। उन्हें प्रगाढ़ ध्यान में श्रीकृष्ण के दर्शन–आलिंगन होने लगे।

देखो ! भगवान से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। यह सम्बन्ध काम का हो, क्रोध का

हो या भय का हो, स्नेह, नातेदारी या जैसा भी हो वे सभी वृत्तियाँ भगवन्मय होकर भगवान को ही प्राप्त कराती हैं।

ब्रज बालाओं को सम्बोधित करते हुए—भगवान श्रीकृष्ण ने प्रथमतया स्त्रियों के धर्म के बारे में शास्त्रोक्त उपदेश दिया और अन्त में कहा—गोपियों ! मेरी लीला और गुणों के श्रवण से, रूप के दर्शन से, उन सबके कीर्तन और ध्यान से मेरे में जैसी अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है, वैसा प्रेम मेरे पास रहने से नहीं होता। अतः तुम लोग अपने–अपने घर लौट जाओ—

**श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात्।**
**न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान्।।27।।**

*(अ. 29 स्क. 10 पूर्वार्द्ध)*

(आनन्दकन्द सद्गुरु भगवान से एक बार आश्रम में गृहस्थ साधक ने पूछा—प्रभो ! जब मैं घर पर रहता हूँ तो मेरा ध्यान प्रगाढ़ता से आप में लगता है। आपके मनोहारी दिव्य दर्शन होते हैं। परन्तु जब मैं प्रत्यक्ष आपके पास यहाँ आश्रम में आता हूँ, तो ध्यान वैसा नहीं होता, ऐसा प्रभो ! क्यों होता है ?

श्री गुरुदेव भगवान ने उस साधक को स्नेहपूर्वक देखते हुये कहा—लल्ला ! ध्यान में, घर पर तुम्हारा मन अपने गुरुदेव को पाने के लिये लालायित रहता है। यहाँ आने पर मुझे लौकिक कर्मों में व्यस्त देख हो सकता है तुम्हारा भाव वह नहीं रहता जो दूर रहने पर होता है।)

उपरोक्त भगवान श्रीकृष्ण का गोपियों को दिया आदेश अन्तर्जगत् में मन रमने का एक साधन बताया गया है।

अस्तु ! गोपियों को यह सब उपदेश अच्छा नहीं लगा। क्योंकि वे तो श्रीकृष्ण के अनुराग में डूबी हुई थीं। उन्होंने कहा—प्राण वल्लभ! हमारे सखा ! तुम्हारी मन्द–मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवन और मनोहारी वंशी के संगीत ने हमारे हृदय में तुम्हारे प्रेम और मिलन की आग भड़का दी है। इस आग को तुम अपने अधरों की रसधारा से बुझा दो। नहीं तो प्रियतम! हम सभी तुम्हारी विरह–व्यथा की आग से हम अपने शरीर जला देंगी और ध्यान के द्वारा तुम्हें प्राप्त करेंगी। "ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते।"

भगवान श्रीकृष्ण सनकादिक योगियों तथा शिवादि योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं। गोपियों की व्यथा भरी वाणी सुनी और वे दया से भर गये। वे आत्मा राम अपने आप में रमण करते रहते हैं। उन्हें बाह्य वस्तु की अपेक्षा नहीं है, फिर भी उन्होंने हँसकर गोपियों के साथ क्रीडा आरम्भ की—

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्।।42।।

(अ. 29 स्क. 10 पूर्वार्द्ध)

यमुना के तट पर गोपियों के हाथ दबाना, चोटी, जाँघे, नीवी और स्तन आदि का स्पर्श करना, विनोद करना, मुस्काना आदि क्रियाओं के द्वारा उनमें दिव्य कामरस को परमोज्ज्वल प्रेम भाव में परिणत करते हुये श्रीकृष्ण उन्हें आनन्दित करने लगे।

जब श्रीकृष्ण द्वारा सम्मानित, आनन्दित गोपियाँ यह सोचकर अभिमानग्रस्त हो उठीं कि उन–सा संसार में भाग्यवान कोई नहीं है तभी भगवान उनका गर्व शान्त करने हेतु उनके बीच में ही अन्तर्ध्यान हो गये।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत।।48।।

(अ. 29 स्क. 10 पूर्वार्द्ध)

## भय बुद्धि की हार है

*भय हमारी बुद्धि की हार है, हमारे आत्मविश्वास की हार है। मनुष्य सृष्टि का श्रृंगार है, किन्तु मनुष्य तो सृष्टि की निकृष्टतम वस्तु है। भय एक मिथ्या, काल्पनिक भ्रम है। आत्मविश्वास में अनन्त शक्ति है। वह आपको ऊँचे शिखर पर ले जा सकती है। आत्मविश्वास को जगाना शुरू करें और कुछ ही समय में आप में परिवर्तन आ जाएगा। आत्म–विश्वास आस्तिकता का प्रथम चरण है, आत्मविश्वास का अभाव नास्तिकता का प्रारम्भ है, " हाँ, हाँ मैं क्या नहीं कर सकता ? मैं अवश्य कर सकता हूँ और सफल हो सकता हूँ। मैंने बड़े–बड़े काम किये हैं, आगे भी कर दूँगा। प्रभु ने मेरा हाथ पकड़ रखा है, प्रभु कृपा मेरे साथ है। " भय की सीमा नहीं होती है, कहाँ तक भय मानें।*

॥ ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः॥

# धरती का स्वर्ग

अन्तू राम यादव, इलाहाबाद

प्रातः स्मरणीय अनन्त विभूषित श्री सद्गुरुदेव भगवान के पावन युगल चरणों में नमन करते हुए, आइए आज वेदों में कहे गए कुछ व्यवहारिक पक्ष पर चिन्तन किया जाय। वेद का शुद्ध एवं शाब्दिक अर्थ है "ज्ञान"। यह विषय रूखा हो सकता है परन्तु यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय और वेदों में उल्लिखित बिन्दुओं को अपने आचरण में ढालने का प्रयास किया जाय तो सम्भवतः प्रस्तुत विषय बहुत मार्मिक और उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

वैसे वेद अथाह सागर हैं। उनमें गोते लगाकर कुछ मोती निकाल लेना मुझ जैसे अल्पज्ञ के लिये अत्यन्त कठिन है, फिर भी वेदों में कहे गये व्यवहारिक पक्ष की एक झलक आपके समक्ष प्रस्तुत है। यदि साधक का व्यवहारिक पक्ष ठीक नहीं होगा तो उसका आध्यात्मिक पक्ष भी कभी ठीक नहीं हो सकता। साधक का व्यवहार अच्छा है, सरल है, मन में कुटिलता नहीं है तभी उसका प्रवेश अध्यात्म में अथवा योग में हो सकता है। या यों कहा जाय कि तभी वह योग–साधना के पथ का पथिक बन सकता है। गोस्वामी तुलसीदास ने मानस में कहा है–

**"सरल सुभाव न मन कुटिलाई।**
**यथा लाभ संतोष सदाई॥"**

उपरोक्त चौपाई मानस का मक्खन कही जाती है। यदि हमारा व्यवहार एवं स्वभाव सरल हो, मन में किसी भी प्रकार की कुटिलता न हो और प्रारब्ध–पुरुषार्थ के अनुसार हमारे पास जो उपलब्ध हो, हम उसी में सन्तुष्ट रहें तो इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है ? सरल स्वभाव एवं सरल व्यवहार वाला व्यक्ति, गीता के बारहवें अध्याय के उन्नीसवें श्लोक में कहे गये तथ्यों के अनुरूप आचरण वाला होगा–

**"तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।**
**अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥"**

मानस की उपरोक्त एक चौपाई और गीता के उपरोक्त केवल एक श्लोक में उल्लिखित तथ्यों को यदि हम अपने आचरण में ढाल लें तो हमारा मानव जीवन धन्य एवं सार्थक सिद्ध हो सकता है। जब हमारा व्यवहार सुन्दर एवं सरल नहीं होगा तो हम सर्वत्र उलझे रहेंगे और

हमारे मन में स्थिरता आ ही नहीं सकती। जब मन स्थिर नहीं होगा तो धारणा, ध्यान, समाधि कैसे होगी। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने ''सम भाव'' यानी ''समता का व्यवहार'' को योग के लिये बहुत आवश्यक बताया है।

जिस घर के लोग एक साथ बैठकर खाना खाते हैं, प्रेम से एक दूसरे के साथ सम्वाद करते हैं, एक साथ मिलकर ठहाका लगाकर हँसते हैं और उनके हँसने की आवाज बाहर तक सुनाई दे तो समझना चाहिए वहीं स्वर्ग है। ऐसा तभी सम्भव होगा जब हमारा व्यवहार सुन्दर एवं सरल होगा। इसी व्यवहारिक पक्ष को वेदों में बार–बार प्रस्तुत किया गया है और कहा गया है कि यही **''धरती का स्वर्ग''** है। वेदों में ऐसे अनेक वचन हैं जिनमें यह निर्देश दिया गया है कि मनुष्य एक साथ मिलकर रहें, समता से रहें। स्वभावों एवं विचारों में कुछ अन्तर होते हुए भी उन्नति के कार्यों में सबको एक मत हो जाना चाहिए। एकता जहाँ मिटती है, परिवार, समाज, राष्ट्र वहीं टूटता है। एकता तभी रह सकती है जब परस्पर समता का व्यवहार हो।

अथर्ववेद, काण्ड–3, सूक्त–30, मंत्र 5 से 7 में ऋषि कहते हैं–''मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ, तुम वृद्धजनों और गुरुजनों का आदर करो, स्वस्थ चित्त होकर अपने लक्ष्य को पाने के लिए प्रयत्न करो। तुम प्रातः से सायं और सायं से प्रातः तक अपना मन पवित्र एवं प्रसन्न रखो।'' अथर्ववेद, काण्ड–6, सूक्त–74, मंत्र 1 से 3 में ऋषि कहते हैं–''तुम लोग मिलकर रहो, तुम लोगों के मन मिलें और आचरण मिलें। तुम लोग निर्दोष मन से एकता के पथ पर चलो।'' ऋगवेद, मण्डल–5, सूक्त–51, मंत्र 15 में ऋषि कहते हैं–''जैसे सूर्य और चन्द्रमा आपस में न लड़ते हुए तथा सबका कल्याण करते हुए चलते हैं, वैसे ही हम अपने और दूसरों के लिए कल्याणदायी रास्ते पर चलें।'' ऋगवेद, मण्डल–10, सूक्त–191, मंत्र 1 से 4 में ऋषि कहते हैं–''हे मनुष्यो ! एक साथ मिल बैठकर बात करो और मन को समता में रखकर सत्य को जानने का प्रयास करो।'' अथर्ववेद, काण्ड–3, सूक्त–30, मंत्र 1 से 4 में वैदिक ऋषि–परिवार, समाज, राष्ट्र तथा पूरी मानवता के लिए कितना सुन्दर उपदेश देते हैं, यह सोचने तथा आचरण करने से मीठा अवश्य लगेगा। उनके मुख्य–मुख्य निम्नांकित दस उपदेशों का उल्लेख किया जा रहा है–

(1) ऋषि कहते हैं–मैं तुम्हें उपदेश करता हूँ कि तुम सहृदय वाले बनो क्योंकि सहृदय व्यक्ति किसी को दुख नहीं देता।

(2) वे दूसरी बात कहते हैं–तुम प्रसन्न मन वाले हो। जो प्रसन्न मन वाला होता है, वह स्वयं तो आनन्दित रहता है, अपने सम्पर्क मात्र से दूसरों को भी प्रसन्न करता है। प्रसन्नता निर्दोषता का लक्षण है।

(3) ऋषि तीसरी बात कहते है—किसी से द्वेष न करो, घृणा एवं वैर न करो। किसी का अहित न सोचो।

(4) चौथी बात में ऋषि कहते हैं—तुम सब एक दूसरे के साथ ऐसा स्नेह एवं प्रेम का व्यवहार करो जैसा गाय अपने नवजात बच्चे के साथ करती है।

(5) पाँचवी बात है—पुत्र अपने पिता का अनुव्रत हो अर्थात् वह भक्ति एवं संकल्प पूर्वक पिता के पीछे चलकर उनका सहयोग करे और आज्ञाकारी बने।

(6) छटी बात है—माता के प्रति उत्तम मन रखो, उसके प्रति श्रद्धा—भक्ति रखो। माता अपने पेट में रखकर, पैदा कर, मल—मूत्र धो कर, सेवा कर, दूध पिलाकर, प्यार—दुलार कर और बड़ा करके जो उसने उपकार किया है, वह सर्व विदित है। उसके समान लौकिक क्षेत्र में कोई उपकारी नहीं है।

(7) सातवीं बात—पत्नी, पति से शान्तिपूर्वक मीठे वचन बोले।

(8) ऋषि आठवीं बात कहते हैं—भाई—भाई से द्वेष न करे। जब स्वार्थ में मन फँस जाता है, तब परस्पर कलह होता है। ऋषि कहते हैं—अपने मन को ऐसा स्वच्छ बनाओ कि भाई—भाई में प्रेम बना रहे।

(9) नवीं बात ऋषि कहते हैं—बहिन से बहिन भी द्वेष न करे। सभी बहनें परस्पर प्रेम बनाये रखें।

(10) दसवीं बात ऋषि कहते हैं—एक विचार और एक आचरण वाले बनो। भद्र वचन बोलो, सत्य, प्रिय, हितकर और कम बोलो।

उपर्युक्त ढंग से व्यवहार करने पर घर में समता और प्रेम का साम्राज्य स्थापित होगा तभी वैदिक ऋषियों का कथन—''**धरती का स्वर्ग**'' चरितार्थ हो पायेगा। आइये हम सब सद्गुरुदेव भगवान से यह प्रार्थना करें कि हे गुरुदेव ! हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, ऐसी सद्बुद्धि दें जिससे हम वेदों में दिये गए उपदेशों को अपने आचरण में ढालकर मानव जीवन को सार्थक बना सकें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी भूलों और त्रुटियों के लिए क्षमा—याचना करते हुए अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

सादर जय गुरुदेव !

(प्रयागराज)

# कल्याण का आधार है—योग

—आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

सुख और शान्ति का उपाय है मनुष्य के अन्दर 'स्व' की खोज और आत्मज्ञान की अभीष्ट उपलब्धि। इसी खोज के लिए संसार में विभिन्न धर्मों तथा साधना पद्धतियों के लोग यज्ञ, नाम जप, संकीर्तन, समाज सेवा, दान, तप, शास्त्रों का पाठ तथा ध्यान—समाधि आदि अनेकों उपायों का अवलम्बन लेते है। किन्तु बहुत कम व्यक्ति ही अपनी खोज में सफल हो पाते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि उनकी जिज्ञासा तथा क्रिया में कोई कमी है, अपितु मुख्य बात यह है कि सारी साधनाओं के मूल में योग सन्निविष्ट है। बिना योग सिद्धि के ज्ञान, भक्ति, कर्म तथा आचार जड़हीन वृक्ष की तरह हैं। लाखों प्राणियों में किसी—किसी को अपने माता—पिता के पुण्य कर्मों तथा स्वयं के शुभ प्रारब्ध के फलस्वरूप योग का पवित्र मार्ग प्राप्त हो पाता है। उसमें भी सद्‌गुरु जो ज्ञान तथा क्रिया दोनों में ही पूर्ण सिद्ध हो, सौभाग्य से प्राप्त हो जाय तो साधक रूपी घड़ों में छिद्र होने के कारण, योग सिद्धि प्रायः हो नहीं पाती। श्री सद्‌गुरुदेव ऊपर से अपनी करुणा कृपा की वृष्टि करते हैं और उधर साधक के अपने प्रमाद और दुर्भाग्य से शक्ति बाहर निकल जाती है। परिणाम यह होता है कि साधक खाली का खाली बना रहता है तथा 'कलिहिं, कर्महिं, ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाय' का कथन सामने आ जाता है।

योग साधक चार प्रकार के होते हैं—मन्द या अल्वीर्य, मध्यम उत्तम या अधिमात्र तथा उत्तमोत्तम या अधिमात्रतम। पूर्व दो प्रकार के साधक यदा—कदा देखा—देखी योग ध्यान में प्रवृत्त होते हैं साथ ही उनकी वृत्तियाँ दुनियादारी से भरपूर रहती है। ऐसे साधकों को कई जन्मों में घुणाक्षर न्याय होने पर दैव—कृपा से योग सिद्धि हो पाती है। अन्तिम दो प्रकार के साधक वे होते हैं जिनका जन्म माता—पिता की रजवीर्य की शुद्धि द्वारा सद्‌भाव तथा दृढ़ इच्छा शक्ति से हुआ है और जो अपनी साधना में महा उत्साही तथा दृढ़ निश्चयी हैं। सर्वश्रेष्ठ साधक वह है जिसका जन्म पुण्यवान माता—पिता की तपस्या के फलस्वरूप हुआ है तथा उसके सभी संस्कार शास्त्र विधि से किये गये हों जिससे उसके मूल आवरण और विक्षेप न्यून हो गये हों। उसके बाद उस पर पूर्ण गुरुदेव की अपार करुणा कृपा हो गई हो। जिसने श्री गुरुदेव की ऐसी सेवा की हो जिससे गुरुदेव ने संतुष्ट होकर उसे अपना सर्वस्व दे दिया हो और उसे उसी क्षण

योग की चरम स्थिति प्राप्त हो गयी हो। योग सिद्धि का मूल श्री गुरुदेव के मन की प्रसन्नता है। श्री गुरुदेव की कृपा के बिना अनादि चितिशक्ति साधन का वरण नहीं करती और न उसका कल्याण ही करती है। श्री गुरुदेव उसी पर प्रसन्न होते हैं जो अपना सर्वस्व समर्पण कर देने में कुछ सोच–विचार नहीं करता तथा प्राप्त शक्ति को कंजूस के धन की तरह गुप्त रख सकने की सामर्थ्य रखता है। ऐसा साधक यदि गुरुदेव को मिल जाता है तो वे बिना मांगे ही अपनी अतुलनीय दैवी सम्पत्ति चुपचाप बिना बताये उसी प्रकार उसे दे देते हैं जिस प्रकार द्वारिकाधीश ने निष्काम साधक सुदामा जी को सारा ऐश्वर्य चुपचाप प्रदान कर दिया था। उत्तम कोटि का साधक उठते–बैठते, सोते–जागते, चलते–फिरते, हरक्षण अपने अभ्यास में लगा रहता है। **'सततााभ्यासी भवति द्विजः'**। ध्यान समाधि के सतत अभ्यास से साधक का कर्मबन्धन शिथिल हो जाता है तथा श्री गुरुदेव की कृपा से वह 'धर्ममेघ समाधि' की भूमिका में आरूढ़ हो जाता है, जहाँ उसके द्वारा पुण्य कर्म ही होते हैं।

इस शताब्दी के महान योगी महर्षि अरविन्द ने योग सिद्धि के तीन उपाय बताये हैं–गुरु, शास्त्र तथा उत्साह। सर्वप्रथम साधक को ऐसे गुरु की कृपा प्राप्त हो जाय जो स्वयं क्रिया सिद्ध तथा शास्त्र सिद्ध हों। दूसरे, साधक को शास्त्रों में दृढ़ विश्वास हो तथा उनके पाठ द्वारा सन्देह की निवृत्ति होकर साधना पद्धति की सफलता में पूर्ण विश्वास हो। स्वाध्यायी साधक को इष्ट कृपा शीघ्र प्राप्त होती है। महर्षि पतञ्जलि **'स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः'**–सूत्र में यही फल बताया है। स्वाध्याय के बल से साधक सिद्धानुकम्पा का भाजन बनता है। शास्त्राभ्यास के साथ–साथ जप ध्यान भी आवश्यक है। अन्यथा साधक 'ज्ञानबन्धु' बन जायेगा। शास्त्र–वासना से उसकी बुद्धि कुछ सिद्धान्तों के प्रति दुराग्रही बन जायेगी। एक वेदान्ती महामण्डलेश्वर ने ऋषिकेश में योग–महत्त्व को न समझकर एक सभा में कोरे शास्त्र ज्ञान के दुष्परिणाम स्वरूप अपनी 'ज्ञान बन्धुता' का परिचय देकर कई साधकों की अश्रद्धा तथा शाप वरण कर लिया था। अल्प शास्त्रज्ञ मूर्ख से भी अधिक खतरनाक होता है। साधक को शास्त्रज्ञान को अपनी अनुभूति का विषय बनाना चाहिए। केवल भाषण से शास्त्रवान गधे पर लदी हुई चन्दन की लकड़ी के बोझ के समान है। इसके साथ–साथ साधक आलस रहित होकर हरक्षण उत्साह युक्त हो। उसमें समुद्र को पी लेने की प्यास हो और निरन्तर उत्साह, श्रद्धा और आदर के साथ गुरोपदिष्ट साधना में लगा रहने वाला हो। उत्साही साधक फल की परवाह किये बिना सतत् अभ्यास में रत रहता है। जिसके फलस्वरूप वह थोड़े ही समय में योग की उच्च भूमिकाओं में शिथिल हो जाया करता है। जो साधक साधना से मन मोड़कर मान–सम्मान तथा प्रदर्शन के चक्कर में पड़ जाते हैं वे कहीं के नहीं रहते। योगकुण्डलिनी उपनिषद् में कहा

गया है कि शास्त्र और गुरु के बिना योग सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। अच्छे साधकों का यह अनुभव है कि हमारे सद्गुरु–जिन साधकों पर विशेष कृपा करते हैं उन्हें शास्त्राभ्यास की रुचि प्रदान कर देते हैं। शास्त्र का आधार लेकर ही गुरुदेव साधना के मार्ग का उपदेश दिया करते हैं। अभ्यास के विषय में भगवान पतञ्जलिदेव जी महाराज ने उल्लेख किया है कि–

**स तु दीर्घकाल नैरन्तर्येण**

**सत्कारा सेवितो दृढभूमिर्भवति:।**

अर्थात् दीर्घकाल तक लगातार आदरपूर्वक किया हुआ अभ्यास दृढभूमि बन जाता है। अभ्यास तथा शास्त्राभ्यास के बल से साधक सिद्धि का भाजन बनता है। जब तक साधक को दृढ़ विश्वास नहीं होता तब तक उसे साधना में आनन्द नहीं आयेगा। बिना आनन्द के वह किसी प्रकार की साधना में कैसे प्रवृत्त हो सकेगा।

श्रद्धा और तप योग सिद्धि के अपार साधन हैं। श्रद्धा का जन्म सत्यनिष्ठा से होता है। जिनके जीवन में कपट, छल, छिद्र, जितना कम होगा उतनी ही अधिक उनमें श्रद्धा होगी श्रद्धायुक्त मन साधना के पथ पर सरपट दौड़ लगा सकता है। श्रद्धा योगी की रक्षा माँ की तरह करती है उपनिषद् में भी आत्म–प्राप्ति के सन्दर्भ में ऋषि का उद्घोष है कि सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा, सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्' अर्थात् आत्मा का दर्शन सत्य, तप, यथार्थ ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य के बिना नहीं हो सकता। भगवान व्यासदेव, का भी यही मत है कि–**'अतपस्विन: योगी न सिध्यति'** जो ब्रह्मचर्य द्वन्द्व सहन, सत्य भाषण, प्राणायाम रूपी तप नहीं करता उसे योग में सफलता नहीं मिल पाती। तप से संचित पाप–कर्मों का नाश होता है। 'तपसा किल्विषंहन्ति, प्राणायामेन पातकम्' प्राणायाम के अभ्यास से महापातक नष्ट हो जाते हैं। भूख, प्यास, शीतोष्णादि द्वन्द्वसहन से अशुद्धि का क्षय होकर अणिमादि कायिक तथा दूरदर्शन दूर श्रवणादि ऐन्द्रिय सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। तपस्वी को ही प्राणायाम सिद्ध हो पाता है। आसन सिद्धि से तप सिद्ध होता है इसी प्रकार ब्रह्मचर्य की साधना से उत्साह तथा धैर्य तथा धारणा शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है जिससे साधक में शक्ति को स्वयं ग्रहण करने तथा अधिकारी साधकों पर शक्तिपात करने की सामर्थ्य आती है। प्राणायाम परायण साधक के आगे प्रकाशपथ स्पष्ट हो जाता है। प्रकाशावरण का क्षय होने से ऐसा साधक समाधि के द्वार पर पहुँच जाया करता है।

वराहोपनिषद् में योग सिद्धि के लिए दो प्रकार के उपायों का उल्लेख है–शुकदेवता साधना तथा वामदेव की तरह साधना। शुकदेव का मार्ग विहंगम मार्ग कहलाता है तथा वामदेव का मार्ग पिपीलिका मार्ग कहलाता है। प्रथम तुरन्त मुक्तिप्रद है, द्वितीय क्रमश: मुक्तिप्रद। जो

शुकमार्ग का अवलम्बन करते हैं उन्हें योगसिद्धि शीघ्र हो जाती है। उनका जन्म-मरण चलता रहता है और शनैः-शनैः योग, सांख्य तथा भक्ति के अभ्यास द्वारा कई जन्मों में अभ्यास करते-करते पूर्णता की प्राप्ति करते हैं।

**'अनेक जन्म संसिद्धि ततो याति परां गतिम्'।** —गीता

किसी भी प्रकार की साधना की जाय, सभी का लक्ष्य प्राण जय होता है। प्राणवायु का निरोध करने से केवली कुम्भकावस्था आती है, जिससे साधक में संयम (धारणा ध्यान समाधि की एकत्र स्थिति) सिद्धि की सामर्थ्य आती है। प्राण जय से मनोजय स्वतः हो जाता है। हठयोग प्रदीपिका आदि ग्रन्थों में प्राण जय साधना के लिए निरन्तर अभ्यास पर बल दिया गया है। क्योंकि **'क्रियैव कारण सिद्धेः'** क्रिया द्वारा ही कार्य में सिद्धि होती है। योग क्रिया के लिए साधक को जनरहित एकान्त स्थान चुनना चाहिए जहाँ साधना निर्विघ्न पूर्वक हो सके तथा उस पर किसी की दृष्टि न पड़े। हमें एक ऐसे साधक मिले जो अपनी साधना इतनी गुप्त रीति से करते थे कि उनकी धर्मपत्नी भी उनके बारे में नहीं जानती थी। वे अपनी धर्मपत्नी को सिनेमा और आमोद-प्रमोद में बेरोक-टोक जाने देते तथा मन्दिर पूजा आदि के नाम पर अपनी अरुचि दिखाया करते। वे घर के सब लोगों को सुलाकर एकान्त में पढ़ने के बहाने चले जाते और रात्रि भर जमकर साधना किया करते थे। हमारे सम्पर्क में आने पर उनके घरवालों को उनकी साधना की उच्चावस्था का ज्ञान हुआ। साधना जितनी गुप्त रहती है—उतनी ही वीर्यवती तथा शीघ्र सफल होने वाली होती है।

साधक को योगसिद्धि के लिए युक्ताहार विहार तथा युक्त चेष्ट तथा युक्त कर्म परायण के साथ-साथ युक्त स्वप्न तथा जागरणशील होना चाहिए। गीता में भगवान योगेश्वर श्रीकृष्ण ने साधक अर्जुन को जो उपदेश दिया, उसमें 'युक्त' शब्द विचारणीय है। साधक को ध्यान परायण रहकर भोजन, गमन, शयन, जागरण आदि सारी चेष्टायें तथा क्रियायें करनी चाहिए। सतत् सोते-जागते मन्त्र जप होता रहे तभी यह 'युक्ताहार विहारस्ययुक्त चेष्टस्य कर्मषु। युक्त स्वप्नाव-बोधस्य योगो भवति दुःखहा।' की स्थिति को सार्थक कर सकेगा। जिसका मन हर क्षण अपने इष्ट में रमता है वही 'युक्तावस्था' का साधक होता है। साधक को आहार के संबंध में बहुत सावधान रहना चाहिए, क्योंकि रस्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य—चारों प्रकार के आहार से तीन प्रकार के शरीर-कारण सूक्ष्म तथा स्थूल निर्मित होते हैं। उन शरीरों के अन्दर जितनी शुचिता होगी, उतना ही सतोगुण का उत्कर्ष होने के कारण प्राणों का उच्च भूमिकाओं पर उत्क्रमण सहजता से हो जायेगा तथा ध्यान समाधि अत्यन्त सुलभ हो जायेगी। भोजन में स्वच्छता के साथ पवित्रता भी अति आवश्यक है। साधक के लिए भोजन का नियम है।

हितं मितं च भोक्तव्यं स्तोकं स्तोकमनेकधा।

घी, दूध युक्त मधुर हितकारी भोजन थोड़ी मात्रा में अनेक बार खाना चाहिए जिससे उसके पाचन में प्राणशक्ति अधिक व्यय न हो। युक्ताहार के साथ–साथ साधक को अपनी प्राणशक्ति व्यर्थ की बातों में नष्ट नहीं करनी चाहिए। साधक को मौन रहने का अभ्यास करना चाहिए। व्यवहार चलाने के लिए सारयुक्त कम से कम शब्दों के द्वारा अपनी बात कहनी चाहिए। वाणी का संयम तथा रसना का संयम करने से प्राण एवं वीर्य की शुद्धि होती है। रसना में ही वाक् इन्द्रिय रहती है। अन्य सभी इन्द्रियों का एक–एक ही कार्य है किन्तु रसनेन्द्रिय वागेन्द्रिय के रूप में कर्म तथा ज्ञान दोनों की इन्द्रिय है। अतः इसके संयम से साधक सत्य प्रतिष्ठित एवं ब्रह्मचारी हो जाता है। रसनेन्द्रिय जलतत्व से बनी है तथा जननेन्द्रिय भी जल तत्व से बनी है। अतः एक से दूसरी प्रभावित होती है। इसीलिए प्रायः यह देखा जाता है कि जो बहुत चाट–पकौड़ी खाता है उसका ब्रह्मचर्य नहीं रह पाता। जो ब्रह्मचारी होता है उसकी आहार शुद्धि सहज होती है। इसी प्रकार वागेन्द्रिय अग्नि तत्त्व से निर्मित है जो बहुत बातून होते हैं उनकी दृष्टि भी चंचल होती है। ऐसे साधकों को मन की एकाग्रता नहीं हो सकती। श्रीमद्भागवत में इसीलिए कहा गया है–'जिते रसे जितं सर्वम्।' जिसने रसनेन्द्रिय तथा वागिन्द्रिय को जीत लिया वह त्रिभुवन को जीतने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है–अर्थात् उसे योग सिद्ध हो सकती है। भगवान सदाशिव ने शीघ्र योग सिद्ध के कुछ उपायों का कथन किया है। यथा साधक को नित्य योग सिद्धान्तों का श्रवण करना चाहिए। वैराग्य भाव से वह घर में रहे। सदा मन्त्र जप तथा कीर्तन करते हुए वह शुभ बातें ही सुने। धृति, क्षमा, तप, शौच, लज्जा तथा गुरु सेवा का व्रत लेकर अपने साधन में तत्पर रहने वाले साधक को शीघ्र योग सिद्धि हो जाता है। योगी को दायें स्वर के चलने पर भोजन तथा बायें स्वर के चलने पर शयन तथा दोनों स्वर चलने पर ध्यान करना चाहिए।

योगसिद्धि के लिए योगी साधक को केवल कुम्भक का प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए। तथा उड्डियानबंध, सिद्धासन पद्मासन सिद्धरीति से करने चाहिए। यह रीति सिद्धानुकम्पा से प्राप्त होती है। पुस्तकों या आज के योग शिक्षकों के पास यह नहीं मिल सकती। केवल अधिकारी को ही देने का शास्त्र नियम है अतएव यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया जा रहा। इसके अतिरिक्त पश्चिमोत्तान आसन, सर्वाङ्गासन, विपरीतकरणी मुद्रा, योनिमुद्रा, महामुद्रा, महाबन्ध, महाबेध तथा खेचरी, भूचरी, वजोली, अमरोली आदि मुद्राबन्ध आसन तथा क्रियाओं का अभ्यास सिद्धयोग पद्धिति से करना चाहिये। सिद्धों की अनुकम्पा प्राप्त कर जो योग मिलता है उसे सिद्धयोग कहते हैं। उसकी विशेष पद्धति होती है। दीक्षा के बाद ही साधक उस

पद्धति का अभ्यास कर सकता है। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करने पर साधक क्रमशः परिचयावस्था, घटावस्था तथा निरुद्धावस्था के सोपानों पर आरूढ़ होता चला जाता है।

योग सिद्ध के लिए आवश्यकता इस बात की है कि योगी साधक गुरुपदिष्ट आसन, बन्ध तथा मुद्राओं से नाड़ी शोधन कर ले तथा प्राणों की पश्चिमगति कर केवली कुम्भक की स्थिति दृढ़ कर ले। आगे सारी भूमिकायें श्री गुरुदेव की कृपा से अपने आप स्पष्ट होती जायेंगी। परिचयावस्था में प्राण सूर्य और चन्द्रनाड़ी को छोड़कर निश्चल होकर सुषुम्ना विवर में प्रविष्ट हो जाते हैं। योगी की एकाग्रावस्था दृढ़ होने लगती है। उस समय योगी अपने कर्माशय को जानने लगता है तथा प्रणवजप द्वारा कर्म विपाक का नाश करने की सामर्थ्य वाला बन जाता है। इस अवस्था में योगी पंचभूतों की धारणा दृढ़ करके पंचभूतों के भय से मुक्त हो जाता है।

**मेधावी सर्वभूतानां धारणां यः समभ्यसेत्।**
**शतब्रह्म मृतेनापि मृत्युस्तस्य न विद्यते।।** *—शिव संहिता*

जब योगी मूलाधार चक्र में प्राणवायु को दो घण्टे धारण कर अन्य सभी चक्रों में भी दो–दो घण्टे धारण करने का अभ्यास परिपक्व कर ले तब वह भूतजयी बन जाता है। सौ ब्रह्माओं का मृत्युकाल पूर्ण होने पर भी उसे मृत्यु नहीं मार सकती।

इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करते–करते मन्त्र अधिकारी भी योग सिद्ध बन जाया करता है। आवश्यकता इस बात की है कि साधक कुछ कुर्बान करने को तैयार हो। जो भाग्य भरोसे हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता है उसका भाग्य सो जाता है। जो जागृत रहता है तथा कुछ करता रहता है उसकी मदद को ईश्वरीय शक्ति उतरती है–

**'हिम्मते मरदां मददे खुदा'।**

जो कुछ खर्च करने की हिम्मत रखता है उसे अच्छा सौदा भी मिल जाता है। सबसे बड़ी बात यह है कि श्री गुरुदेव के वचनों पर विश्वास कर ध्यान में मगन हो जाये। साधकों के हितार्थ श्री गुरुदेव का आदेश है कि स्वस्थ रहने तथा नाड़ी शुद्धि के लिए हर साधक को 'जीवन तत्व' क्रियाओं का नियम से अभ्यास करना चाहिए, तथा प्रतिदिन दो घण्टे जप एवं एक घण्टे ध्यान करना चाहिए।

जो इतना करने लगता है उसे अनुभूतियाँ होने लगती हैं। जो साधक परनिन्दा तथा दूसरों को सुधारने के चक्कर में पड़े रहते हैं वे सब कुछ मिलने पर भी लुटे हुए की तरह खाली बन जाया करते हैं।

अतः इस अमूल्य जीवन को सार्थक बनायें।

# ईश्वर प्रणिधान अथवा भक्तियोग

**श्री पूर्णचन्द शास्त्री**

ईश्वर प्रणिधान योग प्राप्ति का एक उत्कृष्ट तथा सुगम मार्ग है। यह वह साधन है जो कि सब साधनों से सरलतम तथा सभी प्रकार के साधकों के लिए कल्याणकारी है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है–अनन्य शरणगति, शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण, अन्तःकरण आदि सब बाह्य तथा आभ्यन्तर कारणों, उनसे होने वाले सभी कर्मों और उनके फलों को अर्थात् अपने सारे जीवन को ईश्वर के समर्पण कर देना, ईश्वर ही मेरे सर्वस्व हैं, वे ही मेरे प्राणाधार, माता–पिता, बंधु तथा सखा हैं, वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ–इस प्रकार का दृढ़ निश्चय रखते हुए हर स्थिति में प्रसन्नचित्त एवं सन्तुष्ट रहना तथा अपने इष्टदेव का हर क्षण चिन्तन करते रहना और अपने गुरु–मन्त्र का अधिकाधिक जाप करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

ईश्वर सब जीवों के परम आश्रय, परम सखा एवं अहैतुक कृपालु हैं। जो व्यक्ति सच्चे हृदय से उनकी शरण ले लेता है उसका पूरा भार वे दयासागर स्वयं उठा लेते हैं। भगवान ने स्वयं अपने मुखारविन्द से इस बात को स्वीकार किया है–

**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति याचते।**
**अभयं सर्वभूतेभ्यः ददाम्येतद् व्रतंमम्।** *(वाल्मीकि रामायण)*

जो मनुष्य "हे प्रभो! मैं आपका हूँ" इस भाव से केवल एक बार भी अपने को सब ओर से मेरे अर्पण कर देता है, उस सच्चे हृदय से प्रार्थना करने वाले भक्त को अपनाकर मैं उसे सम्पूर्ण प्राणियों से सर्वथा भयमुक्त कर देता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

अर्जुन को भक्तियोग का उपदेश करते हुए अखिल लोकनायक श्रीकृष्ण ने भी इस बात की घोषणा की है कि जो साधक मेरी अनन्य शरण ले लेते हैं उनका योग और क्षेम मैं वहन करता हूँ।

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।**
**तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्।।**

जो अनन्य भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं उन नित्य–निरन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। अर्थात्

उनसे मैं भगवत्स्वरूप की प्राप्ति करा देता हूं और भगवत्प्राप्ति के निमित्त किये गये उनके साधन की रक्षा भी मैं स्वयं करता हूं।

"ईश्वर प्रणिधान" अष्टाङ्गयोग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके बिना योगमार्ग में विशेष प्रगति नहीं हो सकती। क्योंकि योगमार्ग में आने वाले विघ्नों की निवृत्ति ईश्वर–प्रणिधान से ही होती है।

योग–दर्शन के साधनपाद में नियमों के अन्तर्गत तथा क्रियायोग के अन्तर्गत ईश्वर प्रणिधान का वर्णन किया गया है तथा उसका फल बताया गया है–समाधि लाभ। जैसे–

**समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।**

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है।

समाधिपाद में समाधि–प्राप्ति के विविध उपायों का वर्णन करते हुए महर्षि पतञ्जलिदेव जी महाराज ने सूत्र संख्या २३ से २९ तक ईश्वर का लक्षण तथा ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप एवं उसका फल बताया है। जैसे–

**ईश्वर प्रणिधानाद्वा।** *(योग सूत्र १/ २३)*

ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की अनन्य शरणागति से भी निर्बीज समाधि सिद्ध हो जाती है।

**तस्य वाचक प्रणवः।** *(योग सूत्र १/ २७)*

उस ईश्वर का नाम 'ओम' है।

**तज्जपस्तदर्थ भावनम्।** *(योग सूत्र १/ २८)*

साधक को ईश्वर के नाम का जप करना चाहिए और उसके स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये। जप के साथ अपने इष्ट का स्मरण करते रहना चाहिए। अथवा–

**जप श्रान्तः शिवंध्यायेत्ध्यान श्रान्तः शिवं जपेत्।**

जप के बाद ध्यान करें और ध्यान के बाद जप करें। इससे सभी अन्तरायों की निवृत्ति हो जाती है और साधक का मार्ग प्रशस्त होता चला जाता है। जैसे–

**ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तदः यभावश्च।** *(योग सूत्र १/ २९)*

ईश्वर के नाम का जप और उसका ध्यान करने से योगमार्ग के सभी अन्तराय दूर हो जाते हैं और परमेश्वर के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

योग का मुख्य उपाय अभ्यास और वैराग्य साधन तो समाहित चित्त वाले आम अधिकारी ही कर सकते है किन्तु विक्षिप्त चित्त वाले मध्यमाधिकारी, जिनका चित्त सांसारिक विषय वासनाओं तथा राग–द्वेष से मलिन है उनके लिए ईश्वर–प्रणिधान ही योग प्राप्ति का एकमात्र साधन है। प्रणिधान अर्थात् अनन्य चिन्तन के प्रभाव से साधक के राग–द्वेष आदि मल दूर हो जाते हैं तथा उसे भोगों से वितृष्णा एवं कर्म–फल में अनासक्ति हो जाती है, जिससे उसका

अभ्यास और वैराग्य स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

श्रीमद्भागवदगीता में ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप एवं उसका फल इस प्रकार बतलाया गया है–

**मच्चित्ता मद्‌गतप्राणाः, बोधयन्तः परस्परम्।**
**कथयन्तश्च मां नित्यं, तुष्यन्ति च रमन्ति च।।**
**तेषां सततं युक्तानां, भजतां प्रीतिपूर्वकम्।**
**ददामि बुद्धियोगं तं, येन मामुपयान्ति ते।।**

अनन्य चिन्तन में अद्‌भुत शक्ति है, जो व्यक्ति सर्वतोभावेन प्रभु का भजन करता है वह प्रभु में ही मिल जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, श्रीमद्‌भागवत्पुराण का वचन है–

**विषयान्ध्यायतो चित्तं विषयेषु विसज्जति।**
**मामनुस्मरतो नित्य मय्येव प्रविलीयते।।**

विषयों का चिन्तन करने से मन विषयों में ही रचा–पचा रहता है और मुझ परमेश्वर का चिन्तन करते रहने से यह मुझ में ही लीन हो जाता है।

प्रभु चरणों का अनन्य चिन्तन करने वाले ध्यानाभ्यासी तथा गुरु–मन्त्र का अधिकाधिक जाप करने वाले श्रद्धालु साधक उक्त सिद्धान्त की सत्यता को अवश्य स्वीकार करेंगे।

सामान्य जनों को भी अखिलात्मा श्रीकृष्ण के इस वचनामृत पर विश्वास करके साधना–परायण बन जाना चाहिए–

**अपि चेत्सुदूराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।**
**क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।**
**कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।**

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी मेरा भक्त होकर अनन्य भाव से मेरा भजन करता है तो वह साधु ही मानने योग्य है। क्योंकि उसने भली–भाँति निश्चय कर लिया है कि ईश्वर भजन के समान श्रेष्ठ कार्य अन्य कुछ नहीं है।

भजन के प्रभाव से वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

ईश्वर की शरणागति को ही भक्ति–योग कहा जाता है। भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति भज–धातु से हुई है, जिसका अर्थ है–सेवा। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की गई है–''सा परानुरक्तिरीश्वरे'', अर्थात् अपने इष्ट में परम अनुराग होना ही भक्ति है।

भक्ति नौ प्रकार की बताई गई है। जैसे–

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणम् पाद सेवनम्।**

अर्चनं बन्दनं दास्यं सख्यमात्मं निवेदनम्।।

महापुरुषों से ईश्वर की लीलाओं को सुनना तथा शास्त्रों को पढ़ना, श्रद्धालुजनों के साथ प्रभु का गुणगान करना, ईश्वर का हर समय स्मरण करते रहना, गुरु–चरणों की सेवा करना, प्रभु का मानसिक पूजन, बन्दन, हास्यभाव से उनकी सेवा करना, सख्यभाव से आत्मीयता रखना और समर्पण–भाव अर्थात् प्रणिधान यह नौ प्रकार की भक्ति हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने शबरी को इस नवधा भक्ति का उपदेश दिया था। यथा–

नवधा भक्ति कहों तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं।।

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान।
चौथी भक्ति मम गुनगन करइ कपट तजि गान।।

मन्त्रजाप मम दृढ़ विश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।।

छठ दम शील बिरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा।।

सप्तम सब मोहिमय जग देखै।
मोतें सन्त अधिक कर लेखै।।

अष्टम यथा लाभ संतोषा।
सपनेहुं नहि देखै परदोषा।

नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना।।

(१) सन्तों का सत्संग करना तथा श्रद्धापूर्वक उनका उपदेश सुनना प्रथम प्रकार की भक्ति है। इसे श्रवण भक्ति कहा जाता है।

(२) ईश्वर की लीला कथाओं में प्रेम रखना तथा उनका गुणगान करना यह दूसरे प्रकार की भक्ति है।

(३) अभिमान को त्यागकर गुरुदेव के चरण कमलों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना तीसरे प्रकार की भक्ति है।

(४) निष्कपट–भाव से ईश्वर का गुणगान करना चौथी प्रकार की भक्ति है।

(५) मन्त्र का जप करना तथा अपने इष्ट में दृढ़ विश्वास रखते हुए निरन्तर अनन्य भाव से प्रभु का चिन्तन करना पाँचवीं प्रकार की भक्ति है।

(६) इन्द्रिय दमन, आदर्श व्यवहार, कर्मों में अनासक्ति तथा सज्जनों के धर्म में निरन्तर उत्साह पूर्वक लगे रहना छठी भक्ति है।

(७) सारे संसार को प्रभुमय देखना तथा सन्तों को ईश्वर से भी श्रेष्ठ समझकर उनकी अधिक से अधिक सेवा करना सातवीं भक्ति है। क्योंकि सन्तों का स्थान ईश्वर से भी ऊँचा है। भक्त कबीर का यह कथन ध्यान देने योग्य है–

**हरि सों तू जनि हेत कर, कर हरिजन सों हेत।**
**माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरि ही देत।।**

(८) अपने पास जो कुछ है उसी में सन्तोष कर लेना तथा स्वप्न में भी दूसरों का दोष न देखना यह आठवीं प्रकार की भक्ति है।

(९) सबके साथ सरल तथा छल रहित व्यवहार करना तथा ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखते हुए किसी भी स्थिति में हर्ष या शोक न करना यह नौवीं भक्ति है।

भक्ति–योग भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका है। प्राणायामादि हठ–योग की कष्ट साध्य क्रियायें हर व्यक्ति नहीं कर सकता और न अभ्यास वैराग्य रूप योग–साधन सबके लिए सम्भव है। उपरोक्त साधना में साधक को अपने साधन की चिन्ता रहती है और साधना में प्रगति न होने पर दुख होता है किन्तु भक्ति–योग में सच्चे हृदय से ईश्वर की शरण ले लेने के पश्चात् उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। उसका सारा भार वे दयामय प्रभु स्वयं उठा लेते हैं। भक्ति–योगी चिन्ता का भार अपने प्राणाधार इष्टदेव पर छोड़कर स्वयं प्रभु चिन्तन में मग्न रहता है। उसके सभी कार्य ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ही होते हैं। अतः उसे कर्मफल की इच्छा नहीं रहती। भक्तियोगी अपनी अनन्य भक्ति के प्रभाव से विपरीत के पहाड़ को हँसते–हँसते पार कर जाता है। कोई भी भौतिक शक्ति उसका सामना नहीं कर सकती। मीरा तथा प्रह्लाद के पावन जीवन चरित्र इस बात के मूर्तिमान उदाहरण हैं। भगवत् शरणागत भक्त योग की सभी सिद्धियों का स्वामी होता है। राम भक्त हनुमान की योग लीलायें इस बात को सिद्ध करती हैं।

महापुरुषों ने भक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। मुनिजन भक्ति का ही वरण करते आये हैं। यहाँ तक योगेश्वर भगवान श्री शंकर भी अपने इष्ट उस परम प्रभु से भक्ति का ही वर माँगते हैं। जैसे–

**बार–बार वर माँगहु हरषि देहु श्रीरंग।**
**पदसरोज अनपायन भक्ति सदा सत्संग।।** *(रा. च. मानस–उ. का.)*

बिना भक्ति के राजयोग सिद्ध नहीं हो सकता। अतः योगाभ्यासी साधकों को चाहिए कि वे अपनी साधना में ईश्वर प्रणिधान को अवश्य स्थान दें।

प्रभु कृपा से जिन सौभाग्यशाली साधकों को गुरुदेव की प्राप्ति हो चुकी है उन्हें अनन्य–भाव

से गुरुदेव के चरण–कमलों का चिन्तन करते रहना चाहिये तथा गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए गुरुमन्त्र का अधिक से अधिक जप करना चाहिये। यदि इतनी साधना हमसे हो जाये तो शेष कार्य वे सर्वशक्तिमान स्वयं पूरा करा देंगे।

जिन्हें अभी गुरुदेव की शरण न मिली हो उन्हे निष्कामभाव से श्रद्धा भक्ति पूर्वक परमेश्वर को अथवा अपने इष्टदेव को ही गुरु मानकर उनके शरणागत हो जाना चाहिये। वे गुरुओं के गुरु दीन–बन्धु परमात्मा स्वयं ही उनका मार्ग–दर्शन करते रहेंगे।

## योगी को ही होता है अन्तर्जगत का ज्ञान–आचार्य श्री

श्री मद्भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में आनन्द कन्द श्री प्रभुजी ने योगी द्वारा सूक्ष्मजगत के क्रियाकलापों को जानने का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। पढ़िये निम्न श्लोक को–

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुन्जानमं वा गुणान्वितम्।
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः।।

अर्थात् जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में उत्क्रमण करने का, शरीर में रहते हुये गुणों से युक्त होकर विषयों के भोग करने की गतिविधियों का ज्ञान योगी को होता रहता है क्योंकि वह ज्ञानचक्षु अर्थात् दिव्य दृष्टि से सम्पन्न होता है। इसके विपरीत अज्ञानी लोग योगज्ञान से रहित होने के कारण इन रहस्यों को नहीं समझ सकते। आगे पढ़िये–

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्य वस्तिम्।
यतन्तो ऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः।।

अर्थात् योगी लोग ध्यान योग के द्वारा अपनी आत्मा में अवस्थित होकर सूक्ष्म शरीर के व्यवहार को देखने वाले होते हैं किन्तु जो अकृतात्मा हैं अयोगी हैं वे चाहने पर भी सूक्ष्म जगत के इस ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वे अन्तर्ज्ञान से रहित हैं।

श्री भगवान् के कहने का तात्पर्य है कि जो ध्यान योग के दृढ़तर अभ्यासी है जिनको दिव्य दृष्टि मिल चुकी है वे अन्तर्जगत में प्रवेश पाते हैं तथा सूक्ष्म जगत के ज्ञान को प्राप्त करने वाले होते हैं। जबकि योग से रहित अज्ञानी लोग इस विषय में मूढ़ ही रहते हैं।

# हल्दी के लाभ

## (डॉ. गणेश नारायण चौहान)

हल्दी का लैटिन नाम कुरक्यूमा लौंगा है। इसके निम्न लाभ हैं—

**चोट लगने पर—**

(1) चोट लगने पर एक चम्मच गर्म दूध के साथ पीने से दर्द व सूजन दूर होती है। शरीर की टूट फूट ठीक हो जाती है। चोट लगने पर चोट के स्थान पर हल्दी का लेप करें। यदि रक्त बह रहा हो तो उस स्थान पर हल्दी भर दें। आँख में चोट लगने पर भी हल्दी का प्रयोग लाभकारी है।

(2) दो चम्मच पिसी हल्दी, चार चम्मच गेहूँ का आटा, एक चम्मच देशी घी, आधा चम्मच सैंधा नमक, थोड़ा सा पानी मिलाकर हलुआ पकायें। चोट लगे स्थान पर इस हलुये की पट्टी बाँधें। आधा किलो उबलते हुए गर्म पानी में आधा चम्मच सैंधा नमक डालें, फिर हिलायें। इसमें एक चम्मच हल्दी डालें। बर्तन को उतारकर ढककर रख दें। जब सेक करने जैसा हो जाये तो कपड़ा भिगोकर चोट वाले अंग का इससे सेक करें। दर्द में आराम मिलेगा।

(3) हड्डी टूटने पर हल्दी के नियमित सेवन से लाभ होता है।

(4) एक प्याज को पीसकर एक चम्मच हल्दी मिलाकर कपड़े में बाँध लें। इसे तिल के तेल में रखकर गर्म करें और इससे सेक करें। कुछ देर सेकने के बाद पोटली खोलकर दर्द वाले स्थान पर बाँध दें।

(5) दाँत रोग—हल्दी, नमक और सरसों का तेल मिलाकर नित्य मंजन करने से दाँत मजबूत होते हैं। हल्दी को भूनकर बारीक पीस लें इसे दुखते दाँतों पर मलने से दर्द दूर होता है। दाँतों के कीड़े मर जाते हैं। मंजन करने से भी दाँत दर्द ठीक होता है।

**गर्भ न ठहरना**—हल्दी की गांठें पीसकर कपड़े में छानकर 6 ग्रा. पानी से फंकी लें जब तक मासिक धर्म चले, लेते रहने से गर्भ नहीं ठहरता है।

**गैस**—पेट में वायु एकत्रित हो जाता है तो बड़ा दर्द होता है। ऐसी स्थिति में पिसी हल्दी और नमक 5–5 ग्रा. गर्म पानी से लेने से तुरन्त लाभ होता है।

आँखों में लाली या टीस जैसा दर्द हो, पीप आती हो, एक चाय चम्मच पिसी हल्दी, आधा किलो पानी में इतनी उबालें कि चौथाई रह जाये फिर उसे बारीक कपड़े में छानकर

सुबह, शाम आँख में डालने से लाभ होता है। गठिया होने पर हल्दी के लड्डू खाने से लाभ होता है।

**घाव**—पिसी हल्दी घी या तेल में मिलाकर गर्म करके रूई भिगोकर घाव पर नित्य पट्टी बाँधने से घाव भर जाता है।

**खाँसी**—खाँसी, सीने में घबराहट हो तो हल्दी गर्म करके, गर्म पानी, नमक घोलकर पिलायें। हल्दी का छोटा टुकड़ा चूसते रहें।

**माता**—माता से बचने के लिये हल्दी और इमली को समान मात्रा में पीसकर चुटकी भर अर्थात् एक चने के बराबर नित्य सात दिन देने से माता नहीं निकलती।

**प्रसव कष्टप्रद**—होता हो तो 6 ग्राम हल्दी पिसी हुई गर्म दूध में मिलाकर सुबह–शाम कुछ दिन नवें महीने में पिलायें।

**गृध्रसी**—यह दर्द कूल्हे से एड़ी तक खिंचता हुआ लगता है। घी, मैदा लकड़ी, आमा हल्दी, मिश्री प्रत्येक दस ग्राम। येसब पंसारी के यहाँ मिलती हैं। इनको पीसकर दूध और पानी प्रत्येक 250 ग्राम में उबालें। पानी जल जाने पर छानकर गर्म–गर्म रोगी को पिलायें और उढ़ाकर सुला दें। पसीना आने पर अन्दर ही अन्दर पोंछते रहें। हवा न दें। चार दिन में आराम हो जायेगा।

**मधुमेह**—यदि बार–बार और अधिक मात्रा में पेशाब आये, प्यास लगे तो 8 ग्राम पिसी हुई हल्दी नित्य दो बार पानी के साथ फंकी लें या आधा चम्मच शहद में मिलाकर चाटें। लाभ होगा।

सवा सौ ग्राम पिसी हुई हल्दी पाँच सौ ग्राम स्प्रिट में मिलाकर शीशी में कार्क लगाकर धूप में रख दें। दिन में तीन बार जोर से हिलायें। तीन दिन बाद छान कर फिर शीशी में रख दें। यह हल्दी की टिंचर है। इसके उपयोग–सफेद दागों पर नित्य तीन बार लगायें, लाभ होगा।

**पित्ती**—(1) पिसी हुई हल्दी एक चम्मच, गेहूँ का आटा दो चम्मच, घी एक चम्मच, चीनी दो चम्मच, आधी कप पानी में डालकर हलुआ बना लें। इसे ठण्डा होने पर नित्य प्रातः खायें, ऊपर से एक गिलास दूध पीयें। इससे पित्ती मिट जाती है।

(2) आधा चम्मच हल्दी, आधा चम्मच मिश्री या शहद मिलाकर दो बार नित्य लें। पित्ती निकलना बन्द हो जायेगी।

**सुजाक (लिंगेन्द्रिय में घाव)**—हो तो 8–8 ग्राम पिसी हुई हल्दी की फंकी पानी के साथ नित्य तीन बार लें।

**मुँह के छाले**—15 ग्राम पिसी हुई हल्दी एक किलो पानी में उबालें, ठण्डा होने पर

सुबह–शाम गरारे करने से लाभ होता है।

स्तनों में दर्द हो तो हल्दी की गाँठ को पानी में घिसकर लेप करने से दर्द दूर हो जायेगा।

**कोढ़, कण्ठमाला**—8 ग्राम हल्दी की फंकी सुबह–शाम दो बार लें। हल्दी की गाँठ को पत्थर पर पानी में घिसकर लगायें। कुछ दिनों तक नित्य सेवन करने से यह रोग ठीक हो जायेगा।

**दाद**—तीन बार दिन में और एक बार रात में सोते समय हल्दी का लेप करते रहने से दाद ठीक हो जाता है।

**खुजली गीली**—शरीर पर कहीं भी या हाथ–पैरों की अंगुलियों के गस्सों में मवाद भरी पीली फुन्सियाँ निकलें, खुजली हो तो एक चम्मच हल्दी, एक कप गर्म दूध, चौथाई चम्मच देशी घी, स्वाद के अनुसार शक्कर डालकर सुबह शाम पीयें। 250 ग्राम सरसों के तेल में दूब का रस 500 ग्राम, आधा पाव हल्दी पानी डालकर पीसकर सबको लोहे की कढ़ाही में डालकर मिला लें तथा गर्म करें। जब ऊबलने लगे तो छान कर बोतल भर लें। इसे मलने से खुजली ठीक हो जाती है। फुन्सियों को साफ करके लगाने से फुन्सियाँ सूख जाती हैं।

**जुकाम**—जुकाम में कफ गिरता हो तो नित्य तीन बार 2 ग्राम हल्दी की फंकी गर्म पानी से लें। जुकाम में आग पर हल्दी डाल कर धुआँ सूँघने से नाक से पानी गिरने लगता है जो लाभ करता है।

## श्री रामलाल प्रभवे नमः

*अत्यन्त हर्ष का विषय है कि महा प्रभुजी के 13वें पावन प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर 6 अप्रैल 2019 से 12 अप्रैल तक श्री प्रभु जी की दिव्य रामायण 'लीला मृतम्' की कथा का आयोजन हो रहा है। कथा व्यास श्री पुरुषोत्तम शरण करौली वाले होंगे जो अपनी समधुर संगीत के साथ कथा का रसास्वादन करायेंगे।*

*अतः सभी गुरु भक्तों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में आकर दिव्य कथा का पूरा आनन्द लें।*

जय गुरुदेव जी की !

# स्थितप्रज्ञ
# गीता का आदर्श पुरुष विशेष

आचार्य विनोबा

'स्थितप्रज्ञ के लक्षण' गीता का अतिशय प्रसिद्ध भाग है। अत्यन्त प्राचीन–काल से लेकर आज तक इतनी प्रसिद्धि प्रायः गीता के किसी भी दूसरे विभाग को नहीं मिली होगी। इसका कारण है, 'स्थितप्रज्ञ' गीता का आदर्श पुरुष–विशेष है। यह शब्द भी गीता का खास शब्द है। गीता के पूर्ववर्ती ग्रंथों में वह नहीं मिलता। गीता के बाद के ग्रंथों में वह खूब मिलता है। स्थितप्रज्ञ की तरह गीता में आदर्श पुरुषों के और भी वर्णन हैं। कर्मयोगी, जीवन्मुक्त, योगारूढ़, भगवद्भक्त गुणातीत, ज्ञाननिष्ठ इत्यादि अनेक नामों से अनेक आदर्श चित्र भिन्न–भिन्न स्थलों पर आये हैं, परन्तु इन आदर्शों को औरों ने भी उपस्थित किया है।

गीता में ये आदर्श भिन्न–भिन्न साधना के वर्णन के सिलसिले में उपस्थित किये गये हैं। वे स्थितप्रज्ञ से कोई भिन्न पुरुष है, ऐसी बात नहीं। 'स्थितप्रज्ञ' के ही वे अनेक पहलू हैं। इन सबके वर्णन में स्थितप्रज्ञ के लक्षण गीता ने प्रायः कहीं न कहीं गूँथ ही दिये हैं। जैसे–गीता के पाँचवें अध्याय में संन्यासी अथवा योगी पुरुष के वर्णन में 'स्थिर–बुद्धि' शब्द प्रयुक्त हुआ है। बारहवें अध्याय में भक्त के लक्षणों की समाप्ति 'स्थिरमतिः' शब्द द्वारा की है। बुद्धि की स्थिरता हुए बिना कोई भी आदर्श पूर्ण नहीं होता। इसीलिए यह प्रकरण इतना महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

जीवन–मुक्ति की सिद्धि के लिए सबूत पेश करते हुए भाष्यकार ने स्थितप्रज्ञ के लक्षण उपस्थित किये हैं। अन्तिम आदर्श का, ध्येयमूर्ति का, साधक की दृष्टि से इतना सविस्तार विवेचन यह एक ही है।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों को समझने के लिए उसके पहले की भूमिका का विचार कर लेना उपयोगी होगा। यह प्रकरण गीता के दूसरे अध्याय के अन्त में आया है। इसके पहले विवेचन के दो भाग आ गये हैं–

(1) सांख्य–बुद्धि अर्थात् आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मविद्याशास्त्र।

(2) योग–बुद्धि अर्थात् आत्मज्ञान के अनुसार जीवन की कला।

शास्त्र तथा कला मिलकर ब्रह्मविद्या परिपूर्ण बनती है। किसी भी विद्या पर यह बात लागू होती है। संगीत–विद्या को ही लें। किसी ने संगीत–शास्त्र तो सीख लिया, परन्तु कण्ठ–स्वर में व्यक्त करने की कला नहीं साधी तो वह संगीत किस काम आयेगा? इसके विपरीत, गले में कला तो है, परन्तु शास्त्र ज्ञान नहीं, तो फिर प्रगति का मार्ग खत्म–कुंठित हुआ समझिये। यही स्थिति अध्यात्म–विद्या की, अर्थात् मनुष्य के जीवन की। मनुष्य का तत्त्व–ज्ञान उसकी बुद्धि में गुप्त रहेगा, प्रकट होगा उसका आचरण। उसके आचरण से ही उसके तत्त्व–ज्ञान का नाप संसार को तथा उसको भी मालूम होगा। आचरण और ज्ञान में अन्तर भले ही रहे, पर विरोध हरगिज नहीं रहना चाहिये और अन्तर भी सतत् कर्म करते रहना चाहिए। यह काम योग–बुद्धि का है। तुलसीदासजी ने सन्तों की उपमा त्रिवेणी से दी है। तुलसीदासजी ने संतसमाज को लक्ष्य करके एक अन्य ही त्रिवेणी की कल्पना की है। भक्तिगंगा, कर्मयोग–यमुना, इस तरह उपमाएँ देकर ब्रह्मविद्या को उन्होंने गुप्त सरस्वती का स्थान दिया है।

इस उपमा के द्वारा उन्होंने यह सूचित किया है कि ब्रह्मविद्या सदैव सरस्वती की तरह अव्यक्त ही रहने वाली है। उसे योग–बुद्धि प्रकट करेगी। साधक को योग बुद्धि प्रत्यक्ष मार्गदर्शन कराती है। सांख्य बुद्धि योग बुद्धि की बुनियाद–जैसी है। बुनियाद के बिना घर नहीं बन सकता, बिना घर के बुनियाद बेकार है। दियासलाई में आग अव्यक्त स्वरूप में रहती है। दियासलाई रगड़ने से वह प्रकट होती है। अव्यक्त बिजली का कार्य सूक्ष्म बुद्धि ही जान सकती है। वही जब व्यक्त हो जाती है तब उसकी सामर्थ्य हर किसी को दिखायी देती है। सांख्य–बुद्धि और योग–बुद्धि का पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा ही है।

योग–बुद्धि का पहला स्वरूप है कर्तव्य निश्चय। कर्तव्य–निश्चय हुए बिना साधना आरम्भ ही नहीं होती। निश्चय के बाद एकाग्रता, अर्थात् साधना में तन्मयता, फल पर ध्यान न देते हुए साधनों में लीन हो जाने की वृत्ति, साधनैकशरणता अथवा साधन–निष्ठा। यह दूसरी मंजिल है। उसके आगे की मंजिल है चित्त की निर्विकार दशा अथवा समता, अर्थात् समाधि। यही जब स्थिर, अचल हो जाती है, किसी भी झोंके से जब डगमगाती नहीं तो स्थित–प्रज्ञावस्था प्राप्त होती है। जिस पर विकारों की, विचारों की, बल्कि देववचनों की भी सत्ता शेष नहीं रही है, जिसकी समाधि अचल है, स्थिर हो गयी है, वह स्थितप्रज्ञ है। इस तरह योग–बुद्धि की ये चार मंजिलें हैं–

(१) साधना–निश्चय,

(२) फल–निरपेक्ष एकाग्रता,

(३) समता अथवा समाधि, और

(४) स्थिरसमाधि—अखण्ड, निश्चल और सहज। यही स्थित–प्रज्ञावस्था है।

भगवान् के इस विवेचन से कि योग–बुद्धि का अन्तिम परिपाक स्थिर समाधि में, स्थित–प्रज्ञता में होता है, अर्जुन के हाथ प्रश्न–बीज लगा। इसलिए उन्हीं शब्दों को पकड़कर, उसने यह जानने के लिए कि स्थितप्रज्ञ कैसा होता है, पूछा—

**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव?**
**स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्?**

ऐसे स्थितप्रज्ञ का लक्षण क्या है? वह कैसे बोलता है, कैसे चलता है, कैसे रहता है, कैसे फिरता है, यह सब मुझे बताइये। इसके उत्तर में भगवान् ने स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताये हैं, जो कि हमारी चर्चा का विषय है।

भगवान के विवेचन का विचार करने से पहले यहाँ 'समाधि' शब्द को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, क्योंकि इस शब्द से बहुत ही भ्रम पैदा हुआ है। समाधि का आमतौर पर अर्थ किया जाता है—ध्यानसमाधि। यदि कोई आदमी समाधि में है यानी जिस बात का वह चिन्तन कर रहा है उसके अलावा उसे दूसरा कोई भी सम्वेदन नहीं होता, तो फिर अर्जुन का यह प्रश्न ही उड़ जाता है कि समाधिस्थ पुरुष बोलता कैसे है, चलता कैसे है, फिरता कैसे है? इस कठिनाई को देखकर कुछ भाष्यकारों ने स्थितप्रज्ञ–अवस्था के दो विभाग कर दिए हैं—

(१) समाधि में रहते हुए स्थितप्रज्ञ कैसे बरतता है और (२) समाधि में न रहते हुए कैसे बरतता है—इस तरह दुहरा विवेचन किया है। इस विवेचना में कल्पना तो है, परन्तु उसमें विचार–दोष है। इसमें इस बात का ध्यान नहीं है कि गीता प्रतिपादित इस जगह की समाधि भिन्न प्रकार की है। चढ़ने–उतरने वाली समाधि ध्यान समाधि है। स्थितप्रज्ञ की समाधि इससे भिन्न है। वह ज्ञान–समाधि है। वह न चढ़ती है, न उतरती है। ''नैना प्राप्य विमुह्यति'', इस तरह उसका वर्णन किया गया है। अर्थात् वह एक स्थिति है, वृत्ति नहीं। ध्यान–समाधि एक वृत्ति है। चार–चार दिन टिक जाने पर भी उसके उतरने की अपेक्षा रहती है, यह ऐसी समाधि नहीं है।

स्थितप्रज्ञ की समाधि वृत्ति नहीं है, वह निवृत्ति है। 'निवृत्ति' शब्द से लोग घबराते हैं। वे कहते हैं—''यह तो खामोश होकर बैठ जाता है'', परन्तु यह ठीक नहीं है। आखिर खामोश बैठना भी एक वृत्ति ही है। वह सब तरह से निवृत्त है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह ध्यान नहीं करेगा। किसी सेवा–कार्य का चिन्तन करने के लिए, अथवा फुरसत के समय में, वह कुछ

समय ध्यानादि करेगा, परन्तु वह उसका लक्षण नहीं है। उसका लक्षण तो है स्थिरबुद्धि। कर्मयोग जैसे एक उपयोगी साधन है, वैसे ध्यान भी उपयोगी साधन है, परन्तु कर्मयोग की तरह ही ध्यान भी स्थितप्रज्ञ की स्थिति नहीं है।

पतञ्जलि के योगशास्त्र के कारण 'समाधि' शब्द का अर्थ, 'ध्यान–समाधि' रूढ़ हो गया है। परन्तु पतञ्जलि ने भी 'ध्यान–समाधि' को अन्तिम स्थिति नहीं माना है। पतञ्जलि के सूत्र सुव्यवस्थित एवं अनुभव पर आधारित शास्त्र है। उनके कुल १९५ सूत्रों में पहले तीन सूत्र सारभूत हैं। ब्रह्मसूत्र की चतुर्सूत्री की तरह योगसूत्र में यह त्रिसूत्री है।

(१) अथ योगानुशासनम्,

(२) योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः,

(३) तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्।

इन तीन सूत्रों में सारा शास्त्र थोड़े में समाप्त हो गया है, परन्तु इसमें समाधि का तो कहीं नाम ही नहीं आया है। 'प्राप्तव्य तो योग है, और चित्तवृत्ति–निरोध' उसकी व्याख्या है। समाधि अर्थात् ध्यान–समाधि भी एक वृत्ति ही है और उसका उपयोग पतञ्जलि ने वृत्ति–निरोधरूपी योग की लब्धि के लिए शिरोमणि साधन के तौर पर बताया है। 'श्रद्धा वीर्य, स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक:' यह उनकी योग पर चढ़ने की सीढ़ी है। आरम्भ में श्रद्धा, उससे वीर्य अर्थात् उत्साह तत्पूर्वक स्मृति अर्थात् आत्म–स्मरण, तत्परिपाक तन्मयतारूपी ध्यान–समाधि, उससे प्रज्ञा, और प्रज्ञा स्थिर हुई तो यही योग है। इन सीढ़ियों से योग प्राप्त होता है, ऐसा उन्होंने स्पष्ट कहा है। अर्थात् योग की प्राप्ति के लिए समाधि के बाद उन्होंने प्रज्ञा बतायी है। यह 'प्रज्ञा' शब्द पतञ्जलि ने गीता से ही लिया है। अर्जुन के प्रश्न से पूर्व के श्लोक में भगवान ने कहा है कि समाधि में बुद्धि के अचल हो जाने पर तुझे योग की प्राप्ति होगी। 'योग' ही पतञ्जलि का अन्तिम शब्द है। उसका साधन उन्होंने प्रज्ञा बताया है और समाधि को प्रज्ञा–लब्धि का साधन बताया है। समाधि का ध्यान–स्वरूप मिटकर जब उसे सदा की सहज स्थिति का स्वरूप प्राप्त होता है, तब वह प्रज्ञा कहलाती है। इस तरह पतञ्जलि के सूत्रों तथा गीता के विवेचन में समन्वय है।

स्थितप्रज्ञ की कल्पना में बुद्धिवाद की पराकाष्ठा हो गई है। बुद्धि, शुद्ध बुद्धि को बोध का साधन माना गया है। राग–द्वेषादि विकारों से अलिप्त बुद्धि ज्ञान का सही साधन हो सकता है। हम कहते हैं कि फलाँ बात मेरी बुद्धि को नहीं जँचती। गीता कहती है–'मेरी बुद्धि को' मत कह, 'मेरी' विशेषण को छोड़कर केवल शुद्ध बुद्धि क्या कहती है, यह देख! 'मेरे' पन में अहंकार है, विकार है, संस्कारों की गुलामी है, परिस्थिति का बन्धन है। तू 'मद्बुद्धिवादी' है

या बुद्धिवादी? जब बुद्धि विकाररहित हो जाती है, सब उपाधियों से अलग हो जाती है तो वह स्थित होती है। 'स्थित होती है' का मतलब सीधी तनकर खड़ी रहती है, डगमगाती नहीं, उसमें कम्पन नहीं रहता। 'सो विकम्पेन योगेन युज्यते', उसे निष्कंप योग प्राप्त होता है—ऐसा जो आगे दसवें अध्याय में कहा है, उसका अर्थ यही है। बुद्धि में जरा-सा भी कम्पन या डगमगाहट, हिचकिचाहट, घबराहट और अनिश्चय न रहना चाहिए। तभी वह बुद्धि काम देगी और उसे तभी बुद्धि कहेंगे। 'स्थित' शब्द का दूसरा अर्थ है 'सरल'। बुद्धि बिल्कुल सरल होनी चाहिए। उसमें जरा भी वक्रता न होनी चाहिए। चरखे के तकुए में, महीन सूत कातते वक्त जरा भी टेढ़ापन नहीं चल सकता। बिलकुल सीधा, सरल होने पर ही वह काम देता है। यही हाल बुद्धि का है। चरखे का सरल-सीधा तकुआ स्थित-प्रज्ञ की बुद्धि के लिए उत्कृष्ट उपमा है। सीधे तकुए को अंग्रेजी में 'ट्रू' कहते हैं। इस शब्द में बड़ी खूबी है। जिस तकुए में जरा भी वक्रता न हो उसे 'ट्रू', अर्थात् अचूक कहते हैं। इसी तरह बुद्धि ट्रू अर्थात् अचूक होनी चाहिए।

कम्पन और वक्रता इन दोषों का थोड़ा पृथक्करण कर लेना चाहिए। वस्तुतः ये दोनों मिलकर एक ही दोष हैं। चरखे के तकुए से यह बात समझ में आती है। जो तकुआ टेढ़ा होता है, वही काँपता है। यही बात बुद्धि की है। सरल-सीधी बुद्धि कभी नहीं काँपती। इस तरह कम्पन्न और वक्रता दोनों के एक रूप होने पर भी विचार की दृष्टि से उनका पृथक्-पृथक् अर्थ ग्रहण करना चाहिए। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो कम्पन मुख्यतः बुद्धि का और वक्रता मन का दोष है। मन एक तरह से बुद्धि का ही भाग है, तो भी विचार की सुविधा के लिए उसे अलग कर लिया जाता है। छोटे बच्चे का मन बिल्कुल सरल होता है, अतः वह बड़ी तेजी से ज्ञान ग्रहण कर सकता है। इसलिए ज्ञान-दृष्टि से ऋजुता को सबसे महत्त्वपूर्ण गुण समझना चाहिए। बिना ऋजुता के निश्चित और निष्कम्प-ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। 'अर्जुन' शब्द का अर्थ भी कोष में 'ऋजु बुद्धिवाला' है।

गीता का 'प्रज्ञा' शब्द विशेष अर्थ का द्योतक है। 'बुद्धि' शब्द सामान्य है। बुद्धि मनुष्य के मनोविकारों के अनुसार बदलने-पलटने वाली होती है। मनुष्य की मानसिक कल्पनाओं के रंग बुद्धि पर चढ़ते हैं। यह रंगीन बुद्धि अचूक निर्णय करने का कार्य नहीं कर सकती। जिस बुद्धि पर मानसिक कल्पनाओं का, विचारों का, पसंदगी-नापसंदगी का, वृत्तियों का रंग नहीं चढ़ता, जो केवल ज्ञान का कार्य करती है, वह प्रज्ञा है। प्रज्ञा तटस्थ होती है। वह ठीक वस्तु-स्वरूप पर लक्ष्य रखकर निर्णय दिया करती है। जब बुद्धि पर रंग चढ़ जाता है तो एक ही बुद्धि की अनेक बुद्धियाँ बन जाती हैं। दया का रंग चढ़ जाने पर दया-बुद्धि, द्वेष का रंग चढ़ जाने पर द्वेष-बुद्धि।

इस प्रकार अनेक बुद्धियाँ मनुष्य को चारों ओर खींचने का, त्रस्त करने का, व्याकुल कर देने का, जर्जर करने का काम अलबत्ता करती रहती है। ऐसी हजार बुद्धियाँ मार्ग–दर्शन करने में बेकार हैं। शुद्ध–बुद्धि, अर्थात् प्रज्ञा ही ठीक निर्णय देती है, क्योंकि उसका अपना कोई रंग नहीं होता। वह थर्मामीटर की तरह होती है। स्वयं थर्मामीटर को बुखार नहीं चढ़ा होता, इसी से वह दूसरों के ताप का मापक हो सकता है।

बुद्धि किसी के पास कम या ज्यादा हो, इसका महत्त्व नहीं है। महत्त्व स्वच्छ बुद्धि का है। आग की छोटी–सी चिनगारी भी कार्यकारी हो सकती है। वह कपास के ढेर को जला सकती है। इसके विपरीत कोयला बहुत बड़ा–सा होने पर भी वह उसमें दब जाता है। प्रश्न बुद्धि के कम या ज्यादा होने का नहीं है। शुद्ध बुद्धि की एक छोटी–सी चिनगारी, एक छोटी–सी ज्योति भी काफी है। बुद्धि की शक्ति की यही खूबी है। शारीरिक शक्ति की बात ऐसी बात नहीं है। कोई सीकिया पहलवान इस जन्म में गामा बन सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह हो सकता है। किसी अल्प–बुद्धि मनुष्य के लिए राष्ट्रकार्य–संचालन का नेतृत्व साधना सम्भव नहीं, परन्तु नितान्त अल्प–बुद्धि और अशिक्षित मनुष्य भी इस जन्म में स्थितप्रज्ञ निःसन्देह हो सकता है। उसके लिए गठरीभर बुद्धि की जरूरत नहीं है। प्रज्ञा की एक चिनगारी ही काफी है। भारी–भरकम बुद्धि चाहे संसार में कितने ही काम–काज और उथल–पुथल करती रहे, परन्तु त्रिभुवन को भस्म करने की सामर्थ्य तो केवल प्रज्ञा की चिनगारी में ही है।

# गीत

**श्री नन्द चतुर्वेदी**

कोटि चरण आओ
सृजन करो युग का नववन्दन
रची धरा के पथ शुचि शोभन
ज्योतिर्मय हे ज्योति स्वर्ग की
धरती पर लाओ!
आलोकित दिशि–दिशि गगनांगन
तृप्त बनें गृह–वस्त्र–हीन जन
एक गीत, गति एक, एक स्वर
कोटि कण्ठ गाओ
वसुधा से कब कौन अजाना
क्षुद्र महत् कब इसने माना
करो शान्त यह कलुष–विभाजन
करुणाघन छाओ
कोटि चरण आओ!

# शरीरगत दशवायु

**श्री रामधन शर्मा शास्त्री**

शरीर में दश वायुओं का निवास है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कर्म कृकल, देवदत्त, धनञ्जय। इनमें प्राण ह्रदय में, अपान गुदा मण्डल में, समान नाभि देश में, उदान कण्ठ में और व्यान समूचे शरीर में रहता है। इनमें पाँच प्राणादि वायु प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त पाँच वायु (उपवायु) और है। उदगार (डकार) उत्पन्न करने वाला नाग नामक वायु है। कर्मवायु का कार्य है नेत्रोन्मीलन, कृकल का कार्य है छींक उत्पन्न करना, देवदत्त का कार्य है जंभाई लेना और धनञ्जय शरीर के सभी अवयवों में व्यापक रहता है। चार घड़ी तक तो यह मृतक शरीर में भी रहता है। इस प्रकार यह दशवायु जीव के स्वरूप में शरीर में भ्रमण करते है।

व्याख्या—प्रधान जो पाँच वायु हैं उनके कार्य का उल्लेख ऊपर नहीं किया गया इसलिये उनका विवेचन भी आवश्यक है। प्राणवायु का स्थान ह्रदय में है यह स्वाँस को बाहर भीतर करता है और भोजनादि का परिपाक करता है। अपान वायु का स्थान गुद देश में है जहाँ से वह मल–मूत्र बाहर निकालने का काम करता है। समान वायु नाभि में रहकर शरीर को यथावत् (स्वाभाविक अवस्था में) रखने का कार्य करता है। उदान वायु कण्ठ में रहता है और शरीर की शुद्धि का कार्य करता है। व्यान सारे शरीर में व्याप्त रहकर ग्रहण करना त्यागना आदि अंगों के धर्मों को करता है।

अन्य मत के अनुसार प्राण वायु मुख, नासा और नाभि में कुण्डलिनी के चारों ओर रहता है। पाँव के अँगूठे में भी उसका सदा निवास है। अपान वायु के स्थान गुद उपस्थ उरु जानु पेडू कटि और नाभि हैं। उदान वायु के स्थान हाथ पाँव और सन्धियाँ हैं। समान वायु का निवास उदराग्नि कला सहित सभी अंग हैं। व्यान वायु के स्थान मुख, नेत्र, नासिका, कान, कण्ठ, कपोल, हाथों के मणिबन्ध माने गये हैं।

त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद् से इन वायुओं का जिस प्रकार से विवेचन मिलता है उसका वर्णन भी यहाँ उचित है।

प्राणापाणी समानश्च उदानो व्यान एव च।  
नागः कूर्मश्च कृकरी देवदत्तो धनञ्जय।।  
चरन्ति दश नाडिषु दश प्राणादि वायव।  
प्राणादि पत्रेक तेषु प्रधानं तत्र च द्वयम्।।  
प्राण एवाथवा ज्येष्ठो जीवात्मानं बिभर्तिया।  
आस्य नासिकयो मध्य ह्रदयं नाभि मण्डलम्।।  
पदागुंष्ठ मिति प्राण स्थानानि द्विजसत्तमः।  
अपानश्चरति ब्रह्मम् गुरु मेढ्रोसुजानुतु।।  
समान सर्वे गात्रषु सर्वव्यापि व्यवस्थितः।  
उदानः सर्वे सन्धिस्थः पादयोर्हस्तयो रापि।।  
व्यानः श्रोतोरुकट्यां च रसाविस सभी कृतम्।

अर्थात्—प्राण अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर और देवदत्त, धनंजय यह दश प्राण वायु दश प्रमुख नाड़ियों में चलते हैं। इनमें प्राणादि प्रथम पाँच प्रधान अथवा दो प्राण और अपान मुख्य हैं। अथवा एक प्राण वायु ही सबसे मुख्य है। जो जीव धारण किये हुए रहता है। प्राण के पाँच स्थान मुख्य हैं। मुख नासिका मध्य भाग हृदय नाभिमण्डल और पाँव का अँगूठा। अपान के चलने के स्थान हैं गुदा, मेढ्, जंघा और घुटने। समान वायु सब अंगों में व्याप्त रहता है। उदान हाथ, पाँव और रोम सन्धियों में स्थित है। व्यान के स्थान हैं—श्रोत्र, जंघा, कटि, एड़ि, कन्धे और कण्ठ नागादि पंच उपवायु त्वचा अस्थि आदि अंगों में रहते हैं।

**प्राणायाम का साधन आवश्यक है।**

जैसेकि कन्दुक अर्थात् गेंद जब हाथ द्वारा पृथ्वी पर ताड़ित होकर स्वयं उछलता है वैसे ही प्राण वायु के स्थान में अपान वायु और अपान वायु के स्थान में प्राण वायु की प्राप्ति में जीव को आकर्षित करके अपान वायु ठहरने नहीं देता। जैसे कि गेंद खेलने वालों के वश में रहता है वैसे ही जीव अविद्या के वश में रहता है। जिस कारण जीव प्राण अपान के वश में रहता है इसी कारण से वह इडा और पिङ्गला नाड़ियों के द्वारा मूलाधार तक गिरता और मुख नाड़ी के रन्ध्रों तक चढ़ता है। इस प्रकार गिरता चढ़ता ही रहता है। और चंचल होने के कारण दिखाई नहीं देता।

**व्याख्या**—यह जीव प्राण अपान वायुओं के वश में रहने के कारण इडा पिंगला नाड़ियों द्वारा हाथ से ताड़ित गेंद के समान गिरता—चढ़ता रहता है। उसकी चंचलता को रोकने के लिए प्राण अपान को जितना आवश्यक है। क्योंकि प्राण अपान को जीते बिना जीवात्मा संयत नहीं हो सकता और जब तक संयत नहीं हो सकता तब तक हृदयकमल के मध्य आत्म—ध्यान भी नहीं बन पाता।

यहाँ जीवात्मा से तात्पर्य चित्त अथवा मन से भी समझना चाहिए। क्योंकि मन के चंचल रहते हुए ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है। शाट्यायनीयोपनिषद् के अनुसार भी मन ही जीव के भवचक्र में घूमने का कारण है। यथा—

**मन एव मनुष्याणां कारण बन्ध मोक्षयोः।**
**बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यैः निर्विषयं स्मृतम्।।**

अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। जो मन विषयों में आसक्त होता है वह बन्धन का और जो विषयों से पराङमुख होता है वह मोक्ष का कारण रहता है। इस प्रकार आत्म साक्षात्कार की उपलब्धि में मन ही प्रमुख कारण है। उसे वश में करना अत्यन्त आवश्यक है।

मैत्रेय्युपनिषद् में कहा है—

**चित्तमेव ही संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।**
**यच्चित्तस्तन्मयो भाति गुह्य मेतत्सनातनम्।।**
**चित्तस्यहिप्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्।।**
**प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमव्यय मश्नुते।।**

अर्थात्—चित्त ही संसार है इसलिए प्रयत्नपूर्वक उसे शुद्ध करें। जैसा चित्त वैसी उसकी गति, यह सनातन सिद्धान्त है। चित्त के शान्त होने पर शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं और शान्त चित्त वाले मनुष्य आत्मा में लीन होकर अक्षय आनन्द प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार ही सिद्ध होता है कि मन को निस्सार विषयों में भटकने से रोका जाय। क्योंकि मन के वश

में होने पर ही साधक आत्मजेता हो सकता है।

**रज्जुबद्धो यथा श्येनो बद्धोऽप्या कृष्यते पुनः।**

**गुण बद्ध स्थता जीवः प्राणापानेन कृष्णते।**

**अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानं च कर्षति।**

**ऊर्ध्वाधः संस्थिता वेतो संयोजयति योगवित्।।**

अर्थात्–जैसे बाज पक्षी के पाँव में डोरी ढीली छोड़ दे तो वह उड़ जायेगा और डोरी के खिंच ले तो पुनः निकट आ जायेगा। उसी प्रकार माया से बंधा हुआ जीव प्राण अपान वायुओं द्वारा ऊपर नीचे खिंचे जाता है। आज्ञा चक्र में स्थित प्राण वायु ऊपर ही मूलाधार में स्थित अपान वायु आज्ञा चक्र में स्थित प्राण वायु को नीचे खींचता है। इस प्रकार यह दोनों वायु परस्पर एक–दूसरे को अपनी ओर खींचता है। परन्तु योगवत्ता पुरुष इन दोनों का संयोजन करते है।

**व्याख्या**–यह जीवात्मा सत्व रज तम इन गुणों के प्रभाव से वासनाओं के बन्धन में पड़ जाता है। उस समय अविद्या के कारण उसे आत्मबुद्धि नहीं रहती और वह शरीर में ही आत्म भ्रांति करने लगता है। परन्तु जब यह बुद्धि में लीन हो जाता है तब उसके निरुपाधि शुद्ध ब्रह्म होने की सम्भावना होती है। उस अवस्था में भी प्राण अपान वायु उसे पुनः खींचते है तब उसकी चित्तवृत्ति विषयों की ओर आकर्षित होकर उसे ईश्वर भाव से हटाकर जीव भाव की ओर ही खींचने लगती है। प्राणापान के पारस्परिक आकर्षण को संयमित करने के लिये योगाभ्यास की अपेक्षा होती है। जो योगी प्राणापान की उक्तक्रिया से परिचित होते हैं वे उन्हें प्राणायाम के द्वारा वश में करके संयुक्त कर लेते है। प्राणपान का यह संयोग ही सूर्य चन्द्रमा का एकाकार कहलाता है जो कि हठ्योग की एक प्रक्रिया है–

सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् में कहा है–

**योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात प्रवर्तते।**

**योऽप्रमन्नस्तु योगेन सयोगी रमते चिरम्।।**

अर्थात्–योग से योग की वृद्धि होती है। इसलिए योग के द्वारा ही योग को जानना चाहिए। योग में सदैव व्रतचित्त रहने वाला योगी चिरकाल तक सुख का उपभोग करता है।

गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है–

**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**

**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।** –गीता ६/२९

अर्थात्–योगयुक्त पुरुष सभी पदार्थों में आत्मा का निवास देखता है इस प्रकार उसे संसार की एकता का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। और वह सर्वत्र समान भाव से देखने लगता है। 'गुण बद्धस्थता जीव' जीव को गुणों से बँधा हुआ माना है यह तीनों गुण माया के अंश है उनसे शरीर सम्बद्ध है या यों कहिए कि गुणात्मक शरीर के बन्धन में पड़े हुए जीव को गुणों के प्रभाव में रहना होता है। उसमें जिस गुण की अधिकता होगी वैसा ही स्वभाव होगा।

यह अनेक विद्वानों की मान्यता है। परन्तु मनुष्य पाप पुण्य से डरता है और सत्व गुण की अधिकता से वैराग्य उत्पन्न होता है। चित्त वृत्तियाँ ब्रह्म प्राप्ति की ओर प्रवृत्त होती हैं।

## सिद्धयोग पत्रिका आय व्यय 2017–2018

| आय | रुपये | व्यय | रुपये |
|---|---|---|---|
| बैंक में पिछला जमा | 540387–00 | कागज व छपाई | 170870–00 |
| वार्षिक शुल्क | 174750–00 | लिफाफे | 13000–00 |
| सहयोग राशि | 53230–00 | कार्यालय खर्च/अन्य | 15000–00 |
| मनी आर्डर | 660–00 | बैंक में जमा | 573431–00 |
| बैंक ब्याज | 23274–00 | रोकड़ शेष | 20000–00 |
| कुल योग | 792301–00 | | 792301–00 |

## सहयोग राशि दाताओं की सूची

1. जज, श्री रामकुमार गोस्वामी, इन्दौर 3500
2. श्री नरेश चन्द्र अग्रवाल, शिकोहाबाद 2100
3. श्री रंजना अरुण पुरवार, वाराणसी 501
4. श्री राजकिशोर, लखनऊ 1101
5. श्री विष्णु खण्डेलवाल, ग्वालियर 500
6. श्री जनक प्रसाद द्विवेदी, झाँसी 500
7. श्री मन्ना लाल तिवारी, अजयगढ़ 500
8. श्री हरिश्चन्द्र शर्मा, अध्यापक, झाँसी 101
9. श्री जयप्रकाश S/o मावढ़मल, पानीपत 1100
10. श्री श्यामलाल चौधरी, हिसार 13500
11. श्री सोमप्रकाश विजय कुमार, सिरसा 1000
12. श्री सौरभ अग्रवाल, धनबाद 1100
13. श्री तोताराम गुप्ता, बेरा जरीरा सुरीर, मथुरा 515
14. श्री उमेश चन्द्र गुप्ता, आगरा 1101
15. श्री पं. किशनलाल शर्मा, रोहतक 1100
16. श्रीमती ओमवती देवी शर्मा, हापुड़ 500
17. श्री पुरुषोत्तम दास चौरसिया, नागपुर 1100
18. श्री परमात्मा पाण्डेय, दूहवा 500
19. श्री लाला शिवचरण मतलोढ़, पानीपत 1100
20. श्री महेश भारती खण्डेलवाल, जयपुर 2000
21. मास्टर मंगलदत्त शर्मा, शेखपुराखालसा, करनाल 500
22. श्री ब्रिजेश पाठक एडवोकेट, सीतापुर 550
23. श्री साहब सिंह सैंगर, उमरी जालौन 501
24. श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव, सरौना जौनपुर 1011
25. AEN जी. पी. गुप्ता, कोटा (राज.) 1100
26. डॉ. अनिरुद्ध प्रधान, गाजीपुर 1500
27. श्री प्रशान्त कुमार प्रधान, गाजीपुर 1700
28. श्री गोविन्द प्रसाद गुप्ता, जयपुर 2100
29. सिद्धयोग मण्डल, इन्दौर 2500
30. श्री सुरेश चन्द गुप्ता, उरई जालौन 1100
31. श्री विमल अग्रवाल, उत्तम नगर 100
32. श्रीमती कृष्णा देवी, नई दिल्ली 1100
33. श्री सुरेन्द्र कोहम्ड, करनाल 550
34. श्री घनश्याम गुप्ता मास्टर, गंगापुरसिटी 500
35. श्री राजेन्द्र गोयल एकाउंटेण्ट, गंगापुरसिटी 500
36. श्री विष्णु गोयल सेक्रेट्री, करौली 500
37. श्री दिनेश चन्द्र गोयल, करौली 500
38. श्री विनोद कुमार गोयल, हिण्डौन सिटी 500
39. श्री सतीश चन्द्र शर्मा, UDC गंगापुरसिटी 500
40. श्री मनसुख लाल गुप्ता व्याख्याता, गंगापुर सिटी 500
41. श्री मदन मोहन गुप्ता, गंगापुर सिटी 500
42. श्री गोविन्द प्रसाद गुप्ता, गंगापुर सिटी 500
43. श्री गुजरमल अग्रवाल, गंगापुर सिटी 500
44. श्री मुकेश मंगल, गंगापुर सिटी 500

# योग-आसन

## वकासन

विधि – इस आसन में सरल भाव से बैठकर अपने हाथों के पंजे जमीन पर जमा लें व अपने पैरों को उठाकर आगे की ओर पाद तल किए हुए अपने कन्धों पर चढ़ा लें व हाथ के बल से सारे शरीर को ऊपर को उठा दें। शरीर के उठने पर फैलाव के साथ और आगे को बढ़ जायेगा। इसी का नाम वकासन है। आसन क्लासों में यह आसन और भी कई प्रकार से कराया जाता है किन्तु अधिक लाभप्रद यही है।

लाभ – इसके करने से भुजदण्ड पुष्ट होते हैं। छाती का विकास एवं उत्साह बढ़ता है। फेफड़े शुद्ध होते हैं। जठराग्नि बढ़ती है व यह सब प्रकार से आरोग्य प्रद है।

●●●

# पाठ से नहीं, पुरुषार्थ से गाड़ी चली

यदि मनुष्य का स्वयं का कुछ किया हुआ न हो तो स्वयं विधाता भी उसकी सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि सृष्टि का विधान अटल है। जिस प्रकार विधान बनाने वाले विधायकों को स्वयं उसका पालन करना पड़ता है, वैसे ही ईश्वरीय अवतार और महापुरुष तो क्या स्वयंभगवान भी अपने बनाए विधानों का उल्लंघन नहीं कर सकते। इससे तो उनका सृष्टि संचालन ही अस्त- व्यस्त हो जायेगा। इस संबंध में उन लोगों को सचेत होकर अपना कर्म करना चाहिये जो सोचते हैं कि भगवान सब कर देंगे और स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें।

एक आदमी श्री हनुमान का उपासक था। एक बार वह बैलगाड़ी लिए कहीं जा रहा था। गाड़ी कीचड़ में फंस गई, वह वहीं खड़ा होकर हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा और गाड़ी बाहर निकालने की कामना करने लगा। तभी उधर से आए एक पण्डित जी ने कहा – मित्र ! हनुमान जी संजीवनी का पता न चलने पर पहाड़ ही उखाड़ लाए थे, तुम कम से कम गाड़ी को हाथ तो लगाओ। आदमी ने थोड़ी ताकत लगाई और बैलगाड़ी बाहर खींच ले गया।

देवता हों या महापुरुष वे तब तक फल नहीं देते, जब तक मनुष्य स्वयं उन आदर्शों के परिपालन के लिए समुद्यत नहीं होता। कर्म विधान पर भी यही सिद्धान्त लागू होता है। ईश्वर उनका फल तब दे जब मनुष्य को बलवान बनाए, याचना भाव नहीं समर्पण भाव बढ़ाये।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20

APRIL 2019

प्रेषण कार्यालय :

# सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

**श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र**

सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________

______________

______________

□□□□□□

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्यमीशः।
अनीशश्चात्मा वध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।

**अर्थात् :** विनाशशील जड़वर्ग एवं अविनाशी जीवात्मा इन दोनों के संयोग से बने हुए व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप इस विश्व को परमेश्वर ही धारण और पोषण करता है। तथा जीवात्मा इस जगत् के विषयों का भोक्ता बना रहने के कारण प्रकृति के अधीन असमर्थ हो इसमें बँध जाता है। और उस परमदेव परमेश्वर को जानकर सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा